

राजरथानी शब्द सम्पदा



राजस्थानी शब्द सम्पदा

मूलचन्द 'प्राणेश'

© मूलचन्द 'प्राणेश

प्रथम संस्करण 1990

मूल्य पचास रुपये मात्र

प्रकाशक राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति
थ्रीहूमरगढ (चूरु) राजस्थान

मुद्रक सौखला प्रिण्टस, सुगन निवास
चन्दन सागर, बीकानेर

आभार

राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, प्रथमाला के अतगत प्रकाशित यह 18वीं पुस्तक 'राजस्थानी शब्द सम्पदा विन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने जा रहे हैं। प्राचीन राजस्थानी शब्दों का अर्थ एवम् विवचना राजस्थानी भाषाविद् एवम् कहानीकार श्री मूलचन्द 'प्राणेश' ने अधिक प्रयास से की है। प्रस्तुत पुस्तक में राजस्थानी के शब्दों का सदभ सहित उदाहरण दिया गया है, जिससे पुस्तक की महत्ता और भी बढ़ गई है।

श्री प्राणेश की इस रचना में राजस्थानी भाषा साहित्य की समृद्धि में अपूर्व योगदान मिलेगा, ऐसी आशा है।

राजस्थानी के पाठक, विद्वान एवम् भाषाविद् इस पुस्तक विषयक अपनी अमूल्य राय प्रकट कर सस्था के उत्साह को बढ़ायेंगे।

मन्त्री

प्रताप जयन्ती, 2047

राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति

प्रस्तावना

राजस्थान के आदश चरित्रों पर समग्र भारतीय प्रजा गौरव अनुभव करती है। यहाँ के महान् स्वतंत्रता प्रेमी राणा प्रताप और अप्रतिम वीर दुर्गादास आदि को सम्पूर्ण देश राष्ट्रीय चरित्र मानकर आदर देता है। ऐसे ही अन्य भी अगणित आदश चरित्र राजस्थान के इतिहास में प्रकाशमान हैं, जिनका योगदान कर भारत के बहुसरयक कवि कोविदा ने अपनी रचना धर्मिता सायक की है।

राजस्थान के सम्बन्ध में विरचित भारत के विभिन्न प्रांतों की साहित्य सामग्री भी असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण है। भारत की उन्नत प्रांतीय भाषाओं में राजस्थानी चरित्रों के आधार पर विविध विधाओं में अत्यंत सराहनीय रचनाएँ तैयार हुई हैं और उन्हें खासा लोकप्रियता भी मिली है। इस दिशा में सहज ही बंगला साहित्य का नाम लिया जा सकता है। फिर भी अद्यावधि इस तथ्य पर साहित्यकारों का समुचित ध्यान नहीं जा पाया है कि राजस्थान के इन आदश चरित्रों का निर्माण तो राजस्थानी भाषा और उसके साहित्य से ही हुआ है, उन चरित्र नायकों को प्रेरणा तो मूलतः वही से मिली है। ऐसी स्थिति में यह सहज ही कहा जा सकता है कि राजस्थान के इतिहास से भी अधिक आवश्यक उसके साहित्य का अध्ययन है।

राजस्थानी भाषा का साहित्य असाधारण और अनुपम है। इसकी पुरानी सामग्री में पद्य तथा गद्य की इतनी अधिक विधाएँ हैं कि उनकी समता शायद ही भारत की कोई दूसरी विकसित प्रांतीय भाषा कर सके। राजस्थानी साहित्य की इन विविध विधाओं में रचनाओं की भी प्रचुरता है। परंतु वेद है कि अभी तक वे समुचित रूप से प्रकाश में नहीं आ पाई हैं और पुरानी हस्त प्रतियाँ में पड़ी प्रकाश में आने की प्रतीक्षा कर रही हैं।

पिछले समय में राजस्थान की जनता ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को सर्वाधिक महत्त्व दिया और उसके हृदय में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति इतना अधिक प्रेम भाव उमड़ पड़ा कि उसने अपनी मातृभाषा राजस्थानी को एकदम

गौण मान लिया और उसकी आवश्यक सेवा-मीमा भी छोड़ दी, यहाँ तक कि भारतीय स्वाधीनता सयाम से पूत्र और उसके समाम में भी राजस्थानी भाषा में जो असाधारण प्ररणा गीत गाए गए तथा असाधारण अद्योधन-काय विरचित हुआ उसे भी गौण कर दिया अथवा लगभग भुला ही दिया।¹

इसका फल यह हुआ कि राजस्थानी भाषा साहित्य का समुचित प्रकाश नहीं मिल पाया और उसका अमृत भारत की सम्पूर्ण प्रजा तक नहीं पहुँच सका। हृष का विषय है कि राजस्थानी जनता का ध्यान अब इस दिशा में गया है और राजस्थानी भाषा साहित्य में एक नव-जागरण नजर आ रहा है। ध्यान रखना चाहिए कि यह नव जागरण मात्र राजस्थान के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत के लिए अत्यंत उपयोगी और लाभदायक है।

राजस्थानी साहित्य का इतिहास पिछले लगभग एक हजार वर्षों की अवधि में आता है और उत्तरजालीन अवध्रश में ही इसका प्रारम्भ समझना चाहिए। इसका आरंभ स्वल्प आचार्य हेमचंद्र द्वारा जयन व्याकरण ग्रंथ में संकलित उन बहुसायक लोक प्रचलित लोहो म द्रष्टव्य है जिनकी कुछ विद्वानों ने 'पुरानी हिंदी' कहा है। परंतु यथाथ में यह प्राचीन राजस्थानी अथवा जूनी गुजराती है क्योंकि उसका सम्बंध प्राचीन राजस्थान एवं प्राचीन गुजरात के एकीकृत भू-भाग से है और आज भी इस विस्तृत क्षेत्र में ये पुराने दोहे अपने परिपक्वित अथवा विकसित रूप में लोकमुख पर अवस्थित हैं तथा अत्यंत जनप्रिय हैं।

प्रतीत होता है कि आरंभिक राजस्थानी काय (सन् 1050 से 1450) का अभाव जो प्रधान रूप में शीघ्र प्रधान था मौखिक परम्परा पर अवस्थित होने के कारण विनष्ट हो गया परंतु तत्कालीन भक्ति काय किसी रूप में अद्यवधि सुरक्षित है और वह जन धर्म तथा समाज में सम्बन्धित है। इस विषय में कुछ सामग्री प्रकाश में भी आई है जो आदिजालीन राजस्थानी साहित्य के अध्ययन हेतु नितान्त उपयोगी एवं आवश्यक है।

राजस्थानी साहित्य के इतिहास का मध्य काल (सन् 1450 से 1850) विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस राजस्थानी साहित्य का 'खणकाल' कहा जा सकता है। इस कालावधि में प्रचुर परिमाण में विविध प्रकार का मध्य

राजस्थानी साहित्य और हम काय के कवि कविदों का सत्या भी

राजस्थानी साहित्य के इतिहास का आधुनिक-काल (मन् 1850 से चालू) विविध प्रकार के परिवर्तन देगता रहा है और इस काल में नवीन साहित्य के निर्माण के साथ साथ प्राचीन साहित्य के उद्धार हेतु अनेक प्रयास हुए हैं और हो भी रहे हैं ।

राजस्थानी भाषा के स्वरूप और साहित्य को प्रकाशमान करने के लिए पाश्चात्य विद्वान जाज प्रियमन और लुइजि पिओ तस्सितारी आदि भाषाविदों तथा साहित्य-संगोषकों की सहाय अवसरमरणीय हैं तो साथ ही प रामकरण आसोपा, डॉ मुनीतकुमार घटर्जी डॉ मातीलाल मनारिया, आचार्य बन्दीप्रसाद साकरिया, पद्मश्री सीताराम लालस, श्री उदयरज उज्ज्वल, श्री अजरबन्दी माहटा, श्री रावत सारस्वत, डॉ कन्हैयालाल महल, श्री सोभाग्यसिंह शेखावत, डॉ नारायणगिह भाटी आदि महानुभावों का साधना-पूण काय भी असाधारण रूप से महत्वपूर्ण है ।

इसी श्रृंखला में डा रामसिंह लँवर, श्री मूयकरण पाराव एव श्री नरोत्तमदास स्वाधी की 'प्रयो' राजस्थानी भाषा-साहित्य के उद्धार हेतु विनये रूप से उल्लेखनीय है । उन्होंने विविध प्राचीन राजस्थानी ग्रंथों के सम्पादन के साथ-साथ राजस्थानी भाषा में नवीन साहित्य निर्माण के लिए भी प्रबल प्रेरणा दी । इनके द्वारा सम्पादित 'वैलि प्रिसन रकमणी रे' तथा 'ढावा मारू रा डूहा' ने ता देश-प्राप्ति अर्जित की और राजस्थानी भाषा-साहित्य की गौरव बद्धि में असाधारण योगदान किया ।

इसी क्रम में अन्य अनेक विद्वानों ने भी विविध प्राचीन राजस्थानी ग्रंथों का सम्पादित रूप में प्रकाशित किया और उनका अच्छी लोकप्रियता प्राप्त हुई । इनमें कई ग्रंथों का मूलपाठ साधारण टिप्पणियों सहित प्रकाशित हुआ ता कई ग्रंथ पूणतया हिन्दी टीका एव शब्दावली सहित प्रकाश में आए जिससे राजस्थानी भाषा के विशिष्ट शब्दों की ओर भा विद्वानों का ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक था । इसी क्रम में राजस्थानी शब्द काय भी तयार हुए जिनमें श्री सीताराम लालस का राजस्थानी हिन्दी शब्द-काय' का परिमाण का दृष्टि में अन्तिम है ।

इसी क्रम में समयानुसार विविध विश्वविद्यालयों पाठ्यक्रमों में राजस्थानी ग्रंथों का गामिन किए गए जिमसे उनकी जोर विशेष ध्यान जाना स्वाभाविक था । अतः उनके सम्बन्ध में विस्तृत विवरण आत्मक आलेख तयार

हुए तथा पीएच डी उपाधि हेतु भी राजस्थानी साहित्य के विविध अंग पर शोध प्रबन्ध लिखे गए। इस प्रकार प्रचुर राजस्थानी साहित्य सामग्री विद्वानों के सामने आई। फलस्वरूप राजस्थानी भाषा की विशिष्ट शब्दावली ने विद्वानों को अथ सशोधन की दिशा में सन्तुष्ट किया।

अनेक विद्वानों ने प्राचीन राजस्थानी शब्दों को अपनी मति गति के अनुसार हिन्दी में अथ स्पष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया परन्तु उनमें मतभेद के लिए भी अत्रिण ही अवकाश रहा। फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में अथ सशोधन के लिए विविध पत्र-पत्रिकाओं में एम छोटे-बड़े लेखों के प्रकाशन की एक धारा सी चल पड़ी जिनमें सर्वाधिक लेख लोकगाथा 'ढोला मारू राहू' के अथ सशोधन हेतु लिखे गए।

इनके अनुसार कई प्राचीन राजस्थानी ग्रन्थों के नए संस्करणों में अथ प्रकाशन की दृष्टि से सुधार भी किया गया परन्तु अभी तक यह प्रवाह चल ही रहा है और 'शब्द-चर्चा' राजस्थानी की शोध-पत्रिकाओं का एक विशेष स्तम्भ ही बन गया है।

प्राचीन और मध्यकालीन राजस्थानी भाषा की शब्द-सम्पदा अपरिमेय हानि के साथ-साथ अनुसंधान एवं श्रम साध्य भी है। काफी समय तक इसका अध्ययन तथा अनुशीलन न होने के कारण इसका शब्दाथ एक समस्या बना हुआ है। इस समस्या को सुलझाने के लिए मुशी अजमरीजी डा. माताप्रसाद गुप्त, पं. काशीराम शर्मा श्री रावत सारस्वत डा. मनोहर शर्मा श्री भवरलाल नाहटा डा. शमुसिंह मनोहर श्री मूलचंद प्राणेश आदि ने विशेष श्रम किया है और काफी लेख लिखे हैं, जो गहराई से अध्ययन करने योग्य हैं।

राजस्थानी शब्द-सम्पदा पुस्तक के प्रणयिता श्री मूलचंद 'प्राणेश' इस दिशा में विशेष सन्तुष्ट रहें हैं। आपने स्वयं प्राचीन राजस्थानी का यह ग्रन्थ नागदमण, रणमन्त्रछन्द और राउजस्तमीरी छन्द का हिन्दी टीका सहित सम्पादन किया है जिनके प्रकाशन हेतु भारतीय विद्या मन्त्रिशाघ प्रतिष्ठान श्रीकान्ठर माधुवाण का पात्र है। इसके अलावा श्री प्राणेश ने अथ सशोधन की दृष्टि में काफी लेख भी प्रकाशित करवाए हैं जो विद्वानों द्वारा बड़े ध्यान से पढ़े गए हैं।

हृष का विषय है कि श्री प्राणेशजी की यह प्रतिया अभी तक सतत चालू है। आपकी यह पुस्तक शब्द-चर्चा की दृष्टि में अत्यन्त उपयोगी हाने के

साध-साध पानवधक भी है। खास तौर से राजस्थानी भाषा साहित्य के विद्यार्थियों के लिए यह बड़ी लाभदायक है।

विद्वान् लेखक न 'राजस्थानी शास्त्र-सम्पदा' में अनेक राजस्थानी ग्रंथों के सम्पादकों की श्रुतियों पर प्रकाश डाला है और मशाघन हेतु अपनी सम्मति दी है। इन ग्रंथों में 'ढोला मारू रा दूहा', 'बलि त्रिसन एकमणी री', 'महादेव पावती री बेनि', 'वचनिका राठीड रतनसिंध महेशदासोत री', 'अचलदास खोधी री वचनिका', 'वीसनदेव रास', 'पृथ्वीराज रासा 'गोरखवाणी' 'नाथ सिद्धी की वानिया 'प्रद्युम्न चरित', 'जिणदत्त चरित', 'रास और रासावधो काव्य', 'राजरूपक, डिगल म वीर रस', 'कुतुब शतक' तथा 'राजस्थानी नीति-दूहा' आदि प्रमुख हैं।

इनमें से कई ग्रंथ एक ही विद्वान् द्वारा सम्पादित हैं और कई अनेक विद्वानों के समवेत प्रयास से सम्पादित हुए हैं। इसके साथ ही कुछ ग्रंथ ऐसे हैं, जिनके विभिन्न विद्वानों द्वारा सम्पादित अलग-अलग संस्करण भी प्रकाश में आए हैं।

साथ ही यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि प्रस्तुत ग्रंथ में श्री प्राणेशजी ने अनेक विद्वानों के लेखों में दिए गए सुझावों में से भी आवश्यक एवं उपयोगी सामग्री संकलित की है, जिससे इस पुस्तक की उपयोगिता में विशेष वृद्धि हुई है।

प्रस्तुत ग्रंथ में राजस्थानी के खास तौर से चुने हुए कुल 153 (एक सौ तिरपेन) शब्दों पर अथ प्रकाशन की दृष्टि से अकारान्ति क्रम से विचार किया गया है। इस शब्दावली में और भी वृद्धि की जा सकती थी परन्तु गायद ग्रंथ के आकार को ध्यान में रखकर इसे अधिक विस्तार नहीं दिया गया। फिर भी ऐसा अनुभव होता है कि यह क्रम आगे भी चालू रखने योग्य है क्योंकि अब भी पुरानी राजस्थानी भाषा के ऐसे बहुत से शब्द हैं जिनका अथ संवया स्पष्ट नहीं है अथवा जिनके सम्बन्ध में पण्डितों में पर्याप्त मतभेद है।

विद्वान् लेखक ने पुस्तक में संवय अपने मत की पुष्टि हेतु बड़ी सरया में ऐसे ग्रंथों का उद्धरण किया है, जिनमें विवक्ष्य शब्द का प्रयोग हुआ है। यह सब संवय के विद्वान् अध्ययन अनुशीलन का प्रमाण तो है ही साथ साथ यह प्रक्रिया उन्हीं शब्दों पर और भी अधिन गहराई से विचार करन हेतु अनेक विद्वानों के लिए सुगम माग प्रस्तुत करती है जो सराहनीय है। विषय को

स्पष्ट करने हेतु एक उदाहरण देना उचित प्रतीत होता है—

भावठि

‘भावठि’ शब्द का प्रमाण ‘अच्छदास खीची री वचनिका’ के माध्यम से प्रकाश में आया। यथा—

तउ वीस हृषि विरोळि,
तइ वीसहृषि विराळियइ ।

‘भावठि’ भागइ तू तणइ
हिण्यउ सू काई हिभाळि ।

(वचनिका, पृ 36)

‘वचनिका’ के प्रथम सम्पादक श्री दीनानाथ खत्री ने प्रस्तुत ‘भावठि’ शब्द का अर्थ बिना दिये ही इस विचारणीय शब्द सूची में जग्या का त्यों रख दिया। नवीन संस्करण के सम्पादक श्री भूपतिराम साकरिया ने अपनी गाल माल भाषा में इस शब्द का अर्थ दिया है— सारी इच्छाएँ। उपयुक्त उद्धृत पद्य के तीसरे पद्यांश का हिन्दी अर्थ इस प्रकार दिया है— मरी सारी इच्छाएँ आप पर योछावर हैं। पता नहीं इस अर्थ का आधार क्या है। ‘भावठि’ का सीधा सादा अर्थ होता है—मवकष्ट, दुःख, संकट इत्यादि।

अर्थ उदाहरण—

1 मसतक सुन्दर तिलक धरइ दरसन दीठा भावठि भाजइ ।

—ऐतिहासिक जन काण्ड सग्रह पृ 159

2 घरि घरि मगळ हावइ नवनवा रे भावइ भावठि सगळी भाज रे ।

—वही पृ 246

3 काय तोरा ता घमळ कळोघर, ‘भावठि’ मजण लील मुवाळ ।

—प्रस्तावना, हरिहर, पृ 8

ध्यान रखना चाहिए कि पुराने राजस्थानी साहित्य में सबसे बड़ी संख्या में संस्कृत से व्युत्पन्न शब्दों की है। इसके साथ ही अरबी फारसी से व्युत्पन्न शब्द भी काफी हैं। इनके अतिरिक्त देशज शब्दों की भी बड़ी है और वह वर्तमान में प्रयोग में बाहर है। इस स्थिति में राजस्थानी में शब्दों के विचार में किसी अंश में जटिलता ला दी है।

प्रथम शब्दों की व्युत्पत्ति विषयक जटिलता को छोड़ दिया गया है जिससे यह नव भाषाकरण के लिए अरोचक नहीं हुआ है और विचारधारा के लिए तो जानबूझकर होने के साथ साथ रचिकर भी बन गया है।

हो सकता है कि श्री प्राणेश जी द्वारा प्रस्तुत किए गए शब्दाथ पर यत्र-तत्र अथ विद्वानों का मतभेद हो। फिर भी यह कहना उचित है कि शब्द और उसका अथ एक ऐसा विषय है, जिसमें विद्वानों का मतभेद होना स्वभाविक है। एक ही शब्द अनेकायवाची भी होता है और प्रसंगानुसार उसका अथ बदलता है। साथ ही स्थान और समय के अनुसार भी शब्द में रूपांतर तथा अर्थांतर आता है।

विद्वान लेखक ने ग्रंथ में सवत्र अपना मतव्य वही शालीनता के साथ प्रकट किया है और कही भी दुराग्रह की स्थिति दृष्टिगोचर नहीं होती।

निश्चय ही राष्ट्रभाषा हिंदी प्रचार समिति, श्री डूंगरगढ (चूह) राजस्थान, का यह प्रकाशन सराहना और स्वागत के योग्य है। यह राजस्थानी के साथ ही हिंदी के क्षेत्र में भी शब्दाथ की दृष्टि से उपयोगी है। एतदथ विद्वान लेखक और विख्यात समिति साधुवाद के पात्र हैं।

बीकानेर

दि 21 11-1990 ई

मनोहर शर्मा

अध्यक्ष हिंदी विश्वभारती,

बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

गन तीन दशकों से समिति ने हिन्दी राजस्थानी की अनेक पुस्तकों का प्रकाश किया है। विषय-वस्तुओं का नितांत अभाव के बावजूद संस्थान का निरंतर यह प्रयास रहा कि अचल के श्रेष्ठ साहित्य को प्रकाशित कर लोक के सम्मुख लाया जाए। समिति के कई प्रकाशना के राष्ट्रीय स्तर की रियासि प्राप्त हुई है। समिति की बराबर यह चेष्टा भी रही है कि हिंदी अथवा राजस्थानी की उन पुस्तकों का भी प्रकाशन किया जाए, जिनका महत्त्व दाना भाषाओं में समान रूप से प्रतिपादित है तथा जिससे दोनों भाषाओं की निकटता व परिपूरकता परिभाषित की जा सके। हिंदी के निर्माण में राजस्थानी का कम योगदान नहीं रहा है। खड़ीबोली के निर्माण-काल से ही राजस्थानी को हिन्दी साहित्य में सम्पूर्ण सम्मान मिला है। आज भले ही राजनीतिक या दूसरे अनेक कारणों से राजस्थानी का विकास को कुछ तपा कथिन हिंदी से बंधन लाभ के मार्गों में बाधक मानकर इस प्रांत की मातृ भाषा का दर्जा दिए जाने में विरोध प्रकट कर रहे हों, परंतु हिंदी राजस्थानी के प्राचीन सम्बंध समय की धारा में विलीन न होकर अपने सतत प्रवाह को बनाए रखेंगे इसमें संदेह नहीं। आज जब हम दोनों भाषाओं के भाषा-सामर्थ्य का विश्लेषण करते हैं तो स्वतः यह पाते हैं कि एक ही भाषा उदर से जन्मी इन भाषाओं के परस्पर कितने निकट सम्बंध हैं।

समिति द्वारा पूर्व प्रकाशित पुस्तक प्राचीन गिलालेखों में राजस्थानी भाषा में भी हमने संस्था द्वारा हिन्दी राजस्थानी भाषा, साहित्य के समन्वित स्वरूप को विश्लेषित करने वाले साहित्य के प्रकाशन की घोषणा की थी। हिन्दी राजस्थानी के श्रेष्ठ लेखक श्री मूलचंद प्राणेश की पुस्तक 'राजस्थानी भाषा सम्पदा' को प्रकाशित कर, संस्था गौरव अनुभव करती है। प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक ने राजस्थानी की विलुप्त होती जाती प्राचीन शब्द सम्पदा को श्रुति-तिलम्ब अथ और प्राचीन साहित्य में उसके प्रयोग को उद्धरण सहित प्रस्तुत कर उसे अक्षुण्ण रखने में सल्लेखनीय योग दिया है।

साथ ही उसने शब्दों के बहुभूत और माय स्वरूप को रखने के लिए अथवा थम किया है तथा टिगल पिगल के प्राचीन प्रयोगों के अनुसंधानों-सम्पादकों द्वारा प्रस्तुत किए गए शब्दों के अनुचित अर्थों को तक सम्मत ढंग से शुद्ध एवं सव माय स्वरूप में रखा है ।

राजस्थानी के प्राचीन रासो, वेति, वचनिका एवं छंद शास्त्र प्रयोगों के टीकाकारों ने अनेक शब्दों के अर्थ अनानवग अपने मन मुताबिक कर दिए हैं । यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि राजस्थानी की इस विपुल प्राचीन साहित्य सम्पदा में बहुत कम कृतियों का पुनः सम्पादन या टीकाएं हुई हैं । जिन थोड़ीसी अति प्रसिद्ध कृतियों पर अगर कोई काम हुआ भी है तो वह पूव में किए गए काय का पिष्टपेपण ही है । पूव सम्पादन अथवा टीका में उल्लिखित अशुद्ध और घट्ट स्वरूप को ही अगल टीकाकारों ने अपना लिया । ऐसा इसलिए भी हुआ कि ऐसे विद्वज्जनों में बहुधा राजस्थानी के प्राचीन स्वरूप और इस भाषा की प्रकृति को जानने वाले नहीं थे ।

प्राचीन शब्दों के सही एवं शुद्ध स्वरूप को प्रस्तुत करना ही लेखक का अभीष्ट है । प्राणशजी के अनेक शब्दों के इस खोज-परक काय को प्रकाशित कर सस्या अपन को धन्य समझती है । विद्वान् पाठक पुस्तक को पढ़कर अपने अनमोल सुझावों से अवगत कराएंगे तो लेखक एवं सस्या उनका आभार मानेगी ।

श्याम महर्षि

मन्त्री

राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति,

थीट्टगरगढ (राज)

सम्पादकीय

भारतीय मनीषिया ने शब्द शास्त्र को अनंत और अपार बताया है। व्यक्ति की आयु बहुत थोड़ी होती है तथा उसमें भी अनक विघ्न उपस्थित हो जाते हैं अतः विद्वज्जनो को चाहिए कि जिस प्रकार हंस अपार जल राशि में से दुग्ध का चयन कर लेता है, उसी तरह शब्द जाल में से अत्यावश्यक शब्दों का चयन करें।

भ्रूण विद्यार्थी जीवन से ही शब्दों के स्वरूप और उनके अर्थों के प्रति जिज्ञासा रही है। जब कभी कोई नया शब्द श्रुतिगोचर होता और उसके स्वरूप तथा अर्थ के बारे में पूरी जानकारी नहीं मिल जाती तब तक मन को शांत नहीं मिलती। एक बार मैं इब्रेताम्बर तेरापथी साधुओं के साथ गोचरी ग्रहण करने के लिए चल रहा था तो एक सदगृहस्थ ने आदर सहित विनय की कि महाराज सा सीपी बहरिये। महाराज सा ने उसका वचन सुनकर अपना एक खाली पात्र उक्त गृहस्थ के सम्मुख रखा तो उसने अपनी घिलोड़ी में स दो टोपरी घृत परोस दिया। मेरे मन में सीपी के प्रति जिज्ञासा जागी। मैंने सकोच वश उक्त साधुजी से तो कुछ नहीं पूछा, परन्तु उस गृहस्थ से सीपी के सम्बन्ध में जानकारी चाही। उक्त गृहस्थ साधारण पढ़ा लिखा व्यक्ति था, अतः उसके प्रत्युत्तर (जो परिमाण से सम्बन्धित था) से मेरी जिज्ञासा शांत नहीं हुई। कई वर्षों बाद जब मैं लघु सिद्धान्त कीमुदी को पढ़ रहा था तो उक्त सीपी का समाधान मिला। वस्तुतः यह शब्द संस्कृत का सर्पिन् था, जो प्राकृत में 'सिप्यी' होता हुआ वर्तमान में सीपी हो गया, जिसका अर्थ होता है 'घृत'।

शास्त्र के प्रति विद्यार्थी जीवन से ही जो जिज्ञासा वृत्ति मेरे मस्तिष्क में पनपी वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई और उसमें तीव्रता आई राजस्थानी भाषा के शास्त्र पर अनधिकृत व्यक्तियों द्वारा मनमाने अर्थ थोप देने से।

आज से पूर्व राजस्थानी भाषा के अनेकानेक ग्रन्थों का सम्पादन प्रकाशन हुआ है। उस समय राजस्थानी भाषा का कोई प्रामाणिक कोण उपलब्ध नहीं था। अमरकोश की शली पर रचे हुए पाच-साठ कोश ग्रन्थ अवश्य थे, परन्तु वे पुराने बस्तो-बुगचियों में कद पड़े थे। अधिकतर विद्वानों

का ध्यान उपर गया ही नहीं। अंग्रेजी और हिन्दी के माध्यम से शिक्षित विद्वान देशज शब्दों की व्युत्पत्ति भा सस्कृत शब्दों से खोजते और उससे मिलते-जुलते (ध्वनि साम्य के आधार पर) अन्वय की सृष्टि कर देते।

मरे स्वाध्याय काल में मुझ राजस्थानी भाषा के गौरवशाली शब्दों को देखने का अवसर मिला। जिन विद्वानों ने उक्त शब्दों का सम्पादन किया उनमें से अधिकांश उत्तर प्रदेशीय हिन्दी विद्वान रहे हैं जिन्होंने राजस्थानी भाषा को हिन्दी की एक उपभाषा (बाबी) मानकर ठठ राजस्थानी शब्दों की व्युत्पत्ति सस्कृत के आधार पर खोजने की चेष्टा की और स्थान स्थान पर भ्रूके। कुत्रैव विद्वानों ने पाइअ सह महाणव के आधार पर ध्वनि साम्य का देखकर अर्थ कर लिया। उम अर्थ की मगति उक्त शब्द के माय बगती हो अथवा नहीं बस उहाने लिख मारा और अपने मन का सात्वना दे ली। कतिपय विचित्र अर्थों का आव भी अवगोचन कीजियगा—

रतनू वीरभाण कृत राजरूपक एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक का यकृति है। इसका सम्पादन स्वनामधेय स्वयं रामकृष्णजी आसोपा ने किया है। पाठकों के लाभाय स्थान स्थान पर हिन्दी टिप्पणियाँ एक भावाय भी दिया है। इस प्रयत्न में वे स्थान स्थान पर भ्रूके हैं पर तु एक स्थान पर तो हृद ही कर दी। यथा—

लित आवत मेन किसे न खडा।' पृ 33

पंडितजी ने इस पद्या का हिन्दी अर्थ किया है— पृथ्वी को घेरे मनुष्य किसानों की तरह खड़े हैं। आश्चर्य का बात यह है कि अठारहवीं शताब्दी के काव्य में चारण कवि न मेन अंग्रेजी शब्द का प्रयोग किया! अन्वय की सृष्टि इसी तरह होती है। पूर्वोक्त सम्बन्ध पर बिना साक्ष्य समझ ध्वनि साम्य पर अर्थ निरूप दिया। उक्त पद्याश में मेन शब्द का प्रयोग पवत के अर्थ में किया है। यथा पृथ्वी को घेरे हुए पवत उस प्रकार खड़े हैं माना सना खड़ी हो। हाथियों की सना को पवत की उपमा देना राजस्थानी साहित्य में बहु प्रचलित है।

'ढोला मारू रा दूना राजस्थानी भाषा की एक अद्वितीय का यकृति है। इसका सर्वप्रथम सम्पादन सम्पादक त्रय (सवश्री डा रामसिंह जी, सूयकरण जी पारीक और स्वामीजी) ने किया है। तत्पश्चात् उनकी देखा देखी अनेक विद्वानों ने इस काव्य को हाथ में लिया परंतु जो श्रुतियाँ प्रथम सम्पादन में रह गई थीं वे आगे से आगे चलती रहीं। किसी ने भी उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। कई विद्वानों ने इस सम्पादन पर सहायनात्मक लेख भी लिखे परंतु उक्त श्रुतियों के सुधार के स्थान पर ध्रम ही अधिक फला।

अनेक शब्दों के सम्बन्धी चित्रों में से एकाग्र का अवलोकन कीजिए—

धम्म धमतइ धूवरइ, पग सोनेरी पाळ ।

माळ चाली मदिरे, जाणि छूने छडाळ ॥539॥

इस पद्य में प्रयुक्त 'छडाळ' शब्द को सम्पादक गय ने देशी नाममाला (3 27) में प्रयुक्त 'छडाळ' अप 'छिछाल' मानकर इसका अर्थ 'फ वारा कर दिया जिसकी कोई सगति नहीं है। वस्तुतः यह शब्द हाथी का पर्याय वाची है और प्रसंग के अनुसार यही अर्थ ठीक बैठता है।

डा मोतीलाल मनारिया द्वारा संकलित तथा सम्पादित डिगल में 'वीररस' नामक पुस्तक विभिन्न उच्च कक्षाओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है। पृथ्वीराज रासो का थोड़ा सा भाग भी इस संकलन में सम्मिलित किया गया है। प्रसंग से यथार्थता का है। यथा—

तिनमा कटक त्रिविध घडा' एक एक पग अनुसार । (2 25)

प्रस्तुत पद्यांश में प्रयुक्त त्रिविध घडा का श्री मेनारियाजी ने एक विचित्र अर्थ प्रकल्पित किया है, जिसको देखने पर हसी रोके नहीं रहती। यथा—

त्रिविध घडा अर्थात् 'गर्मी' कर्मियों में शिवजी की लिंग मूर्ति के ऊपर लकड़ी की तिपाई (त्रिपादिका) बना कर उस पर जल का घडा रख देते हैं। उस घड़े के पेंदे में एक छोटा सा छेद बनाकर उसमें कपड़े की बत्ती डाल देते हैं, जिससे थोड़ा थोड़ा पानी लिंग मूर्ति पर गिरता रहता है।

हाँ मेनारियाजी ने प्रसंग पर ध्यान ही नहीं दिया। त्रिपादिका स्थिर रहने वाला उपकरण है। उसकी समानता चलती हुई मनास कैसे की जा सकती है? वस्तुतः 'घडा' शब्द का अर्थ सना न जानने पर उक्त घपला हुआ है अथवा पद्यांश के अर्थ में कोई दुरुहता नहीं है। त्रिविध-घडा=तीन प्रकार का सेना।

इसी प्रकार शैशवीय विरोधियों की जानकारी के बिना मनमाना अर्थ प्रकल्पित कर लिया जाता है। डा हजारीप्रसादजी त्रिवेणी सत साहित्य के उद्भट विद्वान रहे हैं। उ होने नाथ सिद्धा की बानियाँ नामक पुस्तक सम्पादित कर के विद्वज्जना के सम्मुख प्रस्तुत की। पर तु उक्त बानियों में व्यवहृत अनेक शब्द ठेठ शास्त्रियों के हैं जिनका जाने बिना सही अर्थ नहीं किया जा सकता। उक्त बानियाँ में एक पद्यांश है—

धाम की कोयली, धाम का सूवा ।

तास की प्रात कर सब जग मूवा ॥ (34)

प्रस्तुत पद्यांश में प्रयुक्त 'कोयली' का अर्थ कोठरी और सूवा का अर्थ 'शुक

निया है। इस प्रकार अथ होगा— 'बमड़े की खोटी में बमड़े का गुफ।' इम वला का तापय गिड नहीं हुना। बमड की खोटी में बमड का निर्जीव गुफ बिटा देन म माय बम मरेग। बम्बुन बोपनी का अथ यती और 'गुषा का अथ होगा—इमी नाम का साठे का उपकरण (गुपी का पुमिग) यह बोरियों की निमाई क लिए काम म निया जाना है। वला का तापय इम रूप के द्वारा पुन्य एवं निर्या के प्रजनानों क बारे म बताना है, त्रिगवी प्रीति म गारा गमार मर रहा है।

इम प्रकार राजस्थानी ग्रणों के सम्पादन में स्थान-स्थान पर सिधिमताए रही है और एक एमी छम भीग का मजत हो गया है त्रिगवा निराकरण महज में ही नहीं हो सकना।

अनेक भारतीय विज्ञानों के माप-माप इन पणियों के अन्वय में भी पर्याप्त धम करने विभिन्न राजस्थानी ग्रणों पर मतोपनारमक मग त्रिग तथा पत्र-त्रिकाओं म प्रकाशित करवाए। इम प्रयत्न की विज्ञानों ने मराह्ता भी की परन्तु इम प्रकार क पुनरुत्पन्ना म विद्यापियों एवं नवविधियों की कोई नाम नहीं हुआ। अनेक विद्वाना एवं गुरुदा ने राय की विज्ञान प्रकार का प्रयत्न यन् पुस्तकाकार में लोगों के सम्मुख रखा जाये तो राजस्थानी भाषा के प्रेषियों एवं विद्यापिया की बहुत नाम मिल सकता है। प्रस्तुत पुस्तक इमी भाषा का मूर्त स्वरूप है। राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रकार मिति श्रीरुगरण्ड के मत्रिय कायकर्ता श्री दवाम महति एवं श्री येना स्वामी क मजन प्रयत्नों क परिणामस्वरूप यह सामग्री पुस्तकाकार म साहित्य-अनु के सम्मुख आ मकी है अतएव ये दोनों महानुभाव धन्यवाद क पात्र हैं। साथ ही डॉ मनाहर मर्मा का आभार किन मने म प्रकट करू जिहीने अपन बहुमूल्य समय मे म समय निदानकर प्रस्तुत पुस्तक की विद्वत्पूण भूमिका निमी।

प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री मजसन म त्रिग विद्वानों एवं ग्रणों का सहयोग लिया गया है उनका सघन्यवान मयाग्यात उत्तेम कर दिया गया है। फिर भी अनेक ऐसे महानुभाव भी हैं जिनका परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप में उक्त सामग्री चयन मे योगदान रहा है ऐम ममी महानुभावो का भी हृदय स आभार स्वीकार करता हू।

15 अगस्त 1991 (स्वतंत्रता दिवस)

बम्बु (बीकानेर)

मूलसंख्या 'प्राण'।

अउभकई

‘अउभकई’ शब्द ‘ढोला मारू रा दूहा’ के माध्यम से प्रकाश में आया ।

यथा—

सउदागर राजा तिहा, बइठा मंदिर मझ ।

मारू दीठी ‘अउभकई’, जाणि खिबी घण सझ ॥

—ढोला मारू रा दूहा, 86

सम्पादक त्रय (ठा रामसिंह जी, पारीकजी व स्वामीजी) न प्रस्तुत अउभकई शब्द का ‘अचानक परोखे मे हिन्दी अर्थ दिया है, जिससे कवि का तात्पर्य प्रकट नहीं होता है ।

‘अउभकई’ शब्द वर्तमान में भी प्रचलित है और इसका ‘चौकने’ के अर्थ में प्रयोग किया जाता है । उपयुक्त दोह के उत्तराद्ध का हिन्दी भावार्थ होगा—‘(सौदागर ने) मारू को देखा तो चौंक उठा माना सध्याकालीन बादली मे विजली चमकी हो ।

अप उदाहरण—

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप ।

अकबर सूतो ओझक जाण सिराण साप ॥

—प्रसिद्ध राजस्थानी दोहा

अखियात

‘अखियात’ शब्द बचनिका राठौड़ रतनसिध जी महेशदासीत री के माध्यम से चर्चा में आया है । यथा—

अखियात ऊवर । 51/12

—बचनिका पृ 124

बचनिका व सम्पादक श्री गणुसिंहजी बनोहर न ‘अखियात ऊवर’ का हिन्दी भावार्थ दिया है । आपकी महान कीर्ति सदा बनी रह । आगे इसी

शब्द की व्याख्या प्रस्तुत की है—'अखियात (स आग्याति) मुयग, कीर्ति, प्रसिद्धि ।'

श्री काशीरामजी शर्मा ने उपयुक्त अर्थ को अस्वीकार करते हुए लिखा है— उदाहरण दिए हैं उनसे कहानी अर्थ की पुष्टि होती है। फिर कहते हैं—शर्मा ने इसका कहानी (मात्र) अर्थ किया है, जो भ्रान्त है। वास्तविकता यह है कि मस्कृत में विरयात प्रख्यात और रयात का लाक्षणिक प्रयोग हो गया है यद्यपि इनका भी वाच्यार्थ है वह 'यत्ति जिसकी कहानी सब कहते हैं चर्चा सब करते हैं। पर आर्या आग्यात और आख्यात तो वाच्यार्थ में ही प्रयुक्त होते हैं। 'याग्या, याख्यात और व्याख्यान भी प्रसिद्धि का लक्ष्यार्थ नहीं पा सके। अपनी पुस्तक के पृष्ठ 7 पर वे स्वयं लिखते हैं—अख=कहा, फिर पृष्ठ 18 पर लिखा है आखो=कहो, कहतावो। 352 पर आख=कहती है। पंजाबी में आज भी मस्कृत की 'आ' उपसर्ग वाली रया घातु का एकमात्र अर्थ कहना हाता है। प्रसिद्धि या यश' अर्थ नहीं होता। (यच निका का सम्पादन पृ 68)

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है अखियात का शाब्दिक अर्थ तो कहानी ही होता है और लाक्षणिक अर्थ में मुयग कीर्ति प्रसिद्धि इत्यादि भी होता है।

अर्थ उदाहरण—

- 1 अमर आगरे अखियात उवारी मडजीपण ब्रद भारी ।
—श्री मारस्वत टिगळ गीत पृ 33
- 2 मरमल हरे भेछाण दळ भाजिया
राव र काम अखियात रागी ।
—रा वी गी स भा 1 पृ 171
- 3 करण अखियात चढियो भला काळमी
निवाहण वण भुज वाधियोनेत ।
—वाकीदाम ग्रंथावली भा 3 पृ 99

अणवर

अणवर शब्द महादेव पावती री वेलि के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

अणवर वींद टटियो आयउ ।

—महादेव पावती री वेलि 132

प्रस्तुत पद्यांग में प्रस्तुत 'अणवर' को सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत
 । 'अणवर' बनाया है जो माया की प्रकृति एवं प्रसंग की अनुकूलता के
 कारण उपयुक्त नहीं है । 'अणवर दुल्हे का 'अतरंग साथी' एवं 'अनघमित्र'
 होता है । दुल्हे की माति दुल्हिन के साथ भी 'अणवरी' रहने का उल्लेख
 मिलता है ।

अथ उदाहरण—

1 वर ईसर जगनाथ 'अणवर' ।

—महादेव पावती रो वेलि, 284

2 करनाजळ 'अणवर' कहे बद्रजानी वानेत ।

—सिद्धिमा जग्गा, वचनिरा, पृ 244

3 पुंगरण जान सेन है सासति, 'अणवर' गायद किसन अगाहा ।

रघछ सणी घढ साम्हो रतनो मिळियो मोड बघे रिण माह ॥

—राठोड रतनसिंध री वेल पृ 52

अणुराव

'अणुराव' शब्द 'ढोला मारु रा दूहा' क माध्यम से चला वा विषय
 बना । यथा—

ए सारता कहिजइ पसु पलो केरा राव ।

उव बोत्या मर उपरइ था कीषी अणुराव' ॥ दो म 52

—ढोला मारु रा दूहा पृ 172

ढोला मारु के सम्पादक श्री समुत्सिहजी मनोहर न 'अणुराव' का अर्थ
 'अनुराग' किया है जो अनुमानाश्रित है । 'अणुराव' का वास्तविक अर्थ
 होता है 'दुग, मत्तार' । उपरक्त उद्धरण में यही अर्थ अभिप्रेत है । मारवणी
 उक्त मारमों का 'अनुराग' कते वर सबती थी । इन उक्तों के बोधने पर उक्त
 'दुग' अर्थ उपरान्त हुआ ।

अथ उदाहरण—

1 कांय वर अणुराव' काई विगततो वर ।

—राजस्थानी नीति दूहा 113

अलोप

'अलोप शब्द महादेव पारवती की बेलि के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

ज्योति प्रकाश अलोप जग ।

—महादेव पारवती की बेलि, 4

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने 'अलोप जग का हिंदी अर्थ 'ससार में अलुप्त रहता है। किया है जो सका वास्तविक अर्थ नहीं है।

'अलोप' का अर्थ 'अन्वय होना मरना लुप्त होना' होता है। अलोप हुयग्यो का अर्थ ससार से उठ गया लिया जाता है। भगवान शंकर भी इस ससार को लुप्त करने वाले, विनाश के देवता हैं अतः अलोप जग का अर्थ 'भगवान शंकर' भी दिया जा सकता है।

असराळ

असराळ शब्द प्रद्युम्न चरित के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

भविष्यत दुरिउ हरत असराळ ।

—प्रद्युम्न चरित, पृ 6

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक श्री कस्तूरचंदजी कासलीवान ने 'असराळ' का हिंदी अर्थ निरंतर किया है जो प्रसंगानुसूल नहीं है। इस असराळ शब्द का वास्तविक हिंदी अर्थ बहुत भयंकर होता है।

अर्थ उदाहरण—

1 वरमहि वाण सर अमराळ ।

—प्रद्युम्न चरित पृ 28।

2 भेरी तूर वाण्ड 'असराळ ।

—वही, पृ 580

3 असपति तण्ड दळि असराळ' ।

—राव जतसी की छंद (अप्रकाशित)

4 यहू मदन अति 'असराल' ।

—ऐतिहासिक जन वाच्य संग्रह, पृ 90

रूप भेद—असराल

आजणी

'आजणी' शब्द का प्रयोग 'वीसलदेव रास' म हुआ है । यथा—

'आजणी काइ न सिरजी करतार ।

—वीसलदेव रास, 97/5

'वीसलदेव रास' के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने 'आजणी' शब्द का हिन्दी अर्थ 'अजन'— सुमा दिया है जो सवधा भ्रात है । संपादक महोदय ने कदाचि के 'अजन' को उक्त शब्द का रूपभेद मान लिया है, परंतु यहाँ पर 'अजन' का कोई प्रसंग ही नहीं है ।

वस्तुतः 'आजणा जाटा का एक भेद है । ऊमा जिवा 'आजणा, बठा जिवा जाट । उक्ति से यह शब्दाथ स्पष्ट हो जाता है । प्रस्तुत उद्धरण म प्रयुक्त 'आजणी' स्त्रीवाची है, अतः अर्थ होगा 'कृपक स्त्री', 'जाटनी' । उक्त उद्धरण म प्रायना की गई है—'भगवान ! तुमने मुझे 'जाटनी' क्या नहीं बताया ।

आइया

'आइया शब्द महादेव पारवती की वेलि के माध्यम से प्रकाश म आया है । यथा—

ईमर तणी 'आइया' इतडी ।

—महादेव पारवती की वेलि, 87,89

'वेलि' के सम्पादक श्री रावतजी नारस्यत ने 'आइया' शब्द का हिन्दी अर्थ— प्रताप रिया है जो शब्द का वास्तविक अर्थ नहीं है । 'आइया' शब्द का हिन्दी अर्थ 'मर्यादा' या 'आना जाता है । अतमानकालिक गुजराती

भाषा में न वां ग्न जसा उच्चारण किया जाता है। कदाच 'आशा' का ही 'आग्या' ७ आइ या, आग्या बना होगा।

अथ उदाहरण—

1 आइयामटि अठर ताइ आई।

महादेव पारवती री वेलि 188

आगमछ

'आगमछ' शब्द वेलि महादेव पारवती री के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

जोसी जिके 'आगमछ' जाणइ।

—महादेव पारवती री वलि, 344

'वेलि' के टीकाकार श्री रावतजी सारस्वत ने 'आगमछ' शब्द का हिन्दी अर्थ शास्त्र दिया है। कदाच सम्पादन महोदय का ध्यान संस्कृत के 'आगम' शब्द की ओर चला गया दिखाई देता है। वस्तुतः 'आगमछ' शब्द का हिन्दी अर्थ भविष्य होता है। ज्योतिषी भविष्य की बात ही बताया करते हैं सभी उनकी पूछ होती है। वर्तमानकालिक बोल चाल की भाषा में यह शब्द आगूछ अथवा आगूच हा गया है।

आडग

'आडग' शब्द वलि श्री कृष्ण रुक्मिणीरी के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

कठटे बे घटा करे बाळाहाणि

सम्हे आम्हां साम्हइ।

जोगिणी आवइ 'आडग' जाणे,

वरसइ रगत बेपुड व्हइ ॥

—वेलि, 117

वेलि के सम्पादक थोदीशितजी ने आडग शब्द का हिन्दी अर्थ 'चिह्न' दिया है, जिससे वक्ता का तात्पर्य प्रकट नहीं होता है। वेलि की सुबोध मजरी में इसका अर्थ 'वर्षण समय दिया है तथा वनमाली बल्ली व नारायण बल्ली या व बो टोकाया में 'आडग=बरसिवा रा समय जाणि' अर्थ दिया है जो युक्तियुक्त है।

'आडग वर्षा में पूव के मटाण को कहते हैं। इसे वर्षा का पूव रूप' भी कहा जा सकता है। वेलि के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पागेवजी व स्वामीजी) भी 'आडग का हिन्दी अर्थ 'बरसने का उद्यत, वर्षा सूचक' करते हैं, जो मूल अर्थ के पर्याप्त निकट है। 'आडग' का सागोपाग अर्थ प्रकट करने वाला शब्द हिन्दी कौशो में उपलब्ध नहीं है, अतः व्याख्या से ही काम चलाना पड़ता है।

आडो

'आडो शब्द देशीय शब्द 'अड्ड' से बना है, जिसका अर्थ होता है— जो आटे आता हो, बीच में बाधक होता हो वह (पा म म प 27)। राजस्थानी साहित्य में इस शब्द का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। इसी शब्द का आधार पर बना आड शब्द खवावट, अवराध का अर्थ देना है।

अर्थ उदाहरण—

1 जसवत सुण जराव, आगा कहियो एम।

मो पा आडो मेलिहयो, कहा जायद्यु केम ॥42

—वचनिक रा रतनसिंहजीरी, पृ 73

2 औरगसाह दळार 'आडो, लाडो जसवत तणी लड।

—प्रा रा गी, भा 2, पृ 112

3 आवियो जत समयाप 'आडो।

—गीत मजरी, पृ 15

4 काम पडता हुव भूप 'आडो।

—रही, पृ 53

5 आडो' लिली फोश लडि माडजे अनोप।

—वही पृ 69

- 6 'आडो बेम न आवै ।
—रघुवर जसप्रकाश, प 287
- 7 आडइ काई यन थाय ।
—काहड दे प्रबध, प 16
- 8 एव आ लोटई आडी' पडो ।
—वही प 64
- 9 आडा डूगर वन घणा ।
—ढोला मारू रा दूहा, प 69
- 10 आदर देई 'आडा' फिरिया ।
—वही, प 268
- 11 आडा जडिया सजड किमाड ।
—वही, परिगिष्ट

आदरई

आदरइ शब्द राजस्थानी साहित्य एव बोलचाल में समान रूप से प्रयुक्त होता है। परंतु लोग इस आदर संस्कार से जोड़ कर अर्थ का अन्वय करते हैं। परंतु प्रस्तुत शब्द का हिंदी अर्थ 'स्वीकार करना' ही होता है।

अथ उदाहरण,

- 1 पापी पाप बुद्धि 'आदरी' ।
—काहडदे प्रबध, पृ 200
- 2 आपरा वयण हु थापो नहु 'आदरू, आदरू वयण जोराणवाल ।
—प्रा रा गो भाग 1, पृष्ठ 74
- 3 सती धरम साचउ आदरू ।
—काहडदे प्रबध, प 149
- 4 बीजो बीज भवि आदरू ;
—ढोला मारू रा दूहा, पृ 263
- 5 अधिकी भगति जुगति 'आदरइ'
—वही, पृ 264

- 6 औपपद्य जय मत्र 'आदरइ',
मरणा पुत्र तथा बहु भरइ ।

—वही, परिशिष्ट

आदरणो

आदरणो त्रिया पत्र का राजस्थानी साहित्य में प्रचुर प्रयोग हुआ है । कतिपय विद्वान इस शब्द में 'आदर' देगकर 'सेवा-सत्कार' अथ कर देते हैं, जो अयुक्त है । 'आदरणो' शब्द का हिन्दी अर्थ 'स्वीकार करना' होता है और यह शब्द वही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

अर्थ उदाहरण—

- 1 आपरा वयणहू पाणो नहू आदरु'
'आदरु वयण जो राण वाले ।
—श्रा रा गी, भा 1, प 74
- 2 सती धरम माचर 'आदरु' ।
—काहडदे प्रबध, प 149
- 3 पापी पापबुद्धि 'आदरी' ।
—वही, प 200
- 3 मनिके तो मनि हूठ 'आदरघर'
जमलत दुरग तलहटी करीयत ।
—वही, प 193
- 4 बीजो बीज मनि आदर ।
—ढोळा मारु रा दूहा, 263
- 5 मपिही नगति जुगति 'आदरइ' ।
—वही प 264
- 6 औपपद्य जय मत्र आदरइ, मरणा पुत्र का बहु भरई ।
—वही, परिशिष्ट
- 7 निरिष्टया महहोय 'आदर मुत्तगर ।
—श्रा रा गी, भा 7, प 102

आधोफरइ

आधोफरइ शब्द डोला माह रा दूहा के माध्यम से ध्वित हुआ है ।
यथा —

आढावळ आधोफरइ, एवढ मोहि असन ।

तिण अजाण डोलइतणइ मूरण भागइ मन ॥

—डोलामाहू रा दूहा, 439

प्रस्तुत दोहे में प्रयुक्त 'आधोफरइ' शब्द का सपादक त्रय श्रीसूयकरणजी पारीक, श्री ठा रामसिंहजी, श्री नरोत्तमदासजी स्वामी—ने 'आडेवले पहाड की डालू जमीन पर' अर्थ किया है, जो समीचीन नहीं है । इस शब्द का सही अर्थ होता है—'बीच अथवा मध्य तदनुसार उपर्युक्त पद्यांग का अर्थ होगा—आडेवले (अबूद) पहाड के मध्य रेवड में बठे हुए ।

अर्थ उदाहरण—

1 यहू सत्तार धार में डूबे अधपर धारि रहे ।

—बबीर शंघावली, पृ 310

2 डूगरडा आधोफरि लगड सीयळी धाय ।

—धरचरित्रा (अप्रकाशित)

3 'आधोफरइ' मध उपसता ।

—बलि श्रीकृष्ण हकिमणी री, 203

4 धरा व्योम आधोफरे उडि धज्ज ।

—सिद्धियजग्गा वचनिका, पृ 8

आरणि

'आरणि' शब्द बलि श्री कृष्ण हकिमणीरी के माध्यम से प्रकाश में आया है । यथा—

रुक्मइयउ वेखि तपन आरणि रण,

पलि रुक्मिणी जळ प्रमन ।

—बलि, 132

'आरणि' शब्द का हिंदी अर्थ सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) तथा श्री दाक्षितजी 'एहरन पर' किया है, जो समीचीन नहीं है। 'ऐरण' का अर्थ 'अपसर्जन' होता है, उस पर रखकर लोहे को पीटा तो जा सकता है, परंतु तपाया नहीं जा सकता। सम्पादक महोदयों का ध्यान इस आर गया ही नहीं। वास्तव में उपयुक्त उद्धरण में प्रयुक्त 'आरणि' शब्द का हिंदी अर्थ 'तुहार की मट्टी' किया जा सकता है। वनमान कानिक बोल-चाल की भाषा में भी 'आरणि' का यही अर्थ ग्रहण किया जाता है।

अर्थ उदाहरण—

1. अल आरण' नै विल्लै कोयला ।

—गारखवानी, पद 6

2. रिण सप्राम रूप आरणि' लाहाररउ चूल्हउ लेहनइ विलइतप्यउ रोमइ ज्वलित रक्मियउलोहरी परि देखि ।

—नारायणवल्ली टीका (अप्रकाशित)

3. पर पाव वजै तठ आठ घडी, पर 'आरण' ज्यो घण रीठ पडी ।

—राजरूपन, पृ 36

आरिसइ

'आरिस' शब्द 'ढोला मारु रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

इसइ 'आरिसइ' मारुवी, सूनी सेज विछाइ ।

साल्ह धूवर सुपनइ मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ ॥

—ढोला मारु रा दूहा, स 14

आरिसइ शब्द का लेकर ढोला मारु के सम्पादकों ने विभिन्न प्रकल्पनाएँ की हैं जो प्रसंगानुमोदित नहीं हैं। सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) के पश्चात् श्रीशमुंसिंहजी मनीहर ने 'ढोलामारु' पर पर्याप्त परिश्रम किया है परन्तु शब्दायों के मामले में वे स्थान स्थान पर चूके हैं। वे प्रस्तुत 'आरिसइ' शब्द का हिंदी अर्थ 'अवस्था' करते हैं, जो प्रसंगानुमोदित नहीं है। इस शब्द का वास्तविक अर्थ 'चिह्न' अथवा 'लक्षण' होता है।

प्रस्तुत उद्धरण से पूव के दोहे म के चिह्न वर्णित है । यथा—

हस चलण कदलीह जघ बटि बेहर जिम गीण ।

मुख ससिहर सजरनयण, कुच थाफळ, कठ वीण ॥

‘मारवणी’ के शरीर मे उपयुक्त ‘चिह्न’ प्रकट हुए हैं, जिनका सवेत प्रस्तुत उद्धरण मे किया गया है । अर्थात्— इस प्रवार के चिह्न अथवा लक्षणा से युक्त मारु सेज विछावर सोई ।’

अथ उदाहरण—

1 ‘आरिख’ लाज इद रा ।

—राजरूपक, पृ 644

आलोच

‘आलाच शब्द महादेव पारवती री बलि के माध्यम से चर्चा मे आया है । यथा—

‘आलोच करे परवार आलियउ ।

—महादेव पारवती री बलि, 77

बेति के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने आलोच शब्द का हिन्दी अर्थ ‘सोच दिया है जिससे भाव स्पष्ट नहीं होता है । वस्तुतः आलोच शब्द का व्यवहार ‘मन्त्रणा’ के लिए होता है और उपयुक्त पद्यांश में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

अथ उदाहरण—

1 ‘आलोच आपो आप स ।

—महादेव पारवती री बलि, 53

2 कियो आप स आप ‘आलाच वा’ है ।

—नागदमण 108

आवगो

आवगो शब्द राजस्थानी काव्यों में यथावसर प्रयुक्त हुआ है । इसका अर्थ ‘समग्र समस्त पूरा का पूरा’ होता है । काव्यों में यवहृत ‘आवगो का

अथ उपयुक्त 'समद्र' भाव को ही व्यक्त करता है। यथा—

1 सारी घर मोगवि गढ साजा,

रिण 'भावगो' मूझदे राजा ॥29॥

—वचनिका राठौड रतनसिधजी म दा री, प 95

2 घाव मरता 'भावगो' वीत्यो जौवन मूझ ।

—वीरसत सई,

3 उबेलण परीभव तणै छळ भावगो'

ऊजळा सत्री धार मुजा बाज ।

—गजगुण रूपक बघ परिशिष्ट, प 270

आवट्टइ

'आवट्टइ' शब्द 'अचलदास मीचीरी वचनिका के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

आलम अचल सेन 'आवट्टइ'

वनक जिहीं रहि रहि कसवट्टइ ॥

—अचलदासमीचीरी वचनिका पृ 56

वचनिका के सम्पादक श्री भूपतिराम सावरिया ने 'आवट्टइ' का हिन्दी भावाथ 'टकराना' किया है। उद्धरणोक्त पद्यांग का हिन्दी भावाथ इस प्रकार किया गया है—'बादगाह और अचलदास की सेनाएँ इस प्रकार टकराती थीं जैसे साने को रह रहकर कसौटा पर कसा जाता है।'

मूलतः 'आवट्टइ' शब्द प्राचीन भाषा कायों तथा वर्तमानकालिक बोलचाल की भाषा में समान रूप से व्यवहृत हुआ है और इसका अर्थ होता है—'गन गन कम होना, नष्ट होना।' राजस्थानी का 'ओटावणों' (ज्यूद्ध) और हिन्दी का 'ओटाना' इसी शब्द के रूप हैं। 'धीरे धीरे कम होना' एक विशेष स्थिति को प्रकट करता है यद्यपि इस 'नष्ट होना' कथा जा सकती है परन्तु मूल शब्द का भाव यह नहीं है।

1 आमुसण सण 'आवट्ट ।

—प्रा रा मी भा 7, पृ 102

2 जहा उपज तहा फिरि आवट ।

—गोरखवानी, पद 2

3 जब मही 'आवटसी कूरम टळमी ।

—नाथ सिद्धा की बातिया, प 13

आसनउ

'आसनउ' शब्द बेलि श्री कृष्ण रुक्मिणीरी' के माध्यम से प्रकाश में आया है । यथा—

चल पत्र घीयउ दुज देख चित

सकइ न रहति न पूछि सकत ।

इम आवइ जिम जिम सु आसनउ,

तिम तिम मुख धारणा तवत ॥

—बेलि द्वारा 71

'आसनउ' शब्द का अर्थ धनमाली बल्ली वा बा (अप्रकाशित) में इस प्रकार दिया गया है । ज्यु-ज्यु ते विप्र आसनउ दूकडउ आवइ तिम तिम अर्थात् 'आसनउ' का हिंदी अर्थ निम्न पाठ होता है ।

अथ उदाहरण—

1 काळ आसनु जाणेवि माणकसूरि

नयर कछूना जाए विगुण मणि गिरि ।

—कछुली रास

2 'आसनी' तहि ऊषडिय पाथर केरिय खान ।

—आबूरास 33

3 आसनउ आगळि सोहइ सउ

पडिहार नदी चढी प्रचड ।

—सदयवत्सवीर प्रबध 219

4 आडेवळे आषो फरइ, एवड माहि असन ।

तिण अजाण डोटइ तणइ मूरम भागउ म न ॥

—ढोला मारु रा दूहा, 418

आहचइ

आहचइ शब्द महादेव पावती की बलि' के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

'आहचइ' चढी देखण आवास ।

—महादेव पावती की बलि, 315

सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने 'आहचइ' शब्द का अर्थ 'ऊचे' बताया है जो प्रसंगानुकूल नहीं है। डिगल का यह बहुप्रचलित शब्द है जिसका अर्थ होता है 'शीघ्रता से'।

अथ उदाहरण—

1 गाजइ सादूळउ 'आहचइ लइसास ।

—महादेव पावती की बलि 290

2 ताइ 'आहचइ दीप वधाई आम ।

—वही, 294

3 धतुनीबळ पट्ट मेल्हिया 'आहचइ' ।

—वही, 299

4 'आहचइ सकति पूछिया रसर ।

—वही, 370

आहुटि

'आहुटि' शब्द बलि श्री कृष्ण कविमणी की के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

ऊमी सद् सविए प्रससित बलि,

कृतारण प्रिय मिलन वृत्त ।

अवीसज द्वारि विधि 'आहुटि'

श्रुत देहरी परि समाश्रित ॥

—बलि, दाला 165

बलि के मध्य टीकाकार श्री दीशितजी ने 'आहुटि' शब्द का हिन्दी अर्थ 'आहुति' दिया है, जो भ्रान्त है।

उपयुक्त उद्धरण में आये शब्द 'आहुटि' की व्याख्या करते हुये 'सुबोध मजरी' सस्वृत टीकाकार ने उल्लेख किया है—

'पञ्चचादलित्या पुनस्तत्रगतुकामा भवति ति कुन लज्जा निदान तथा वनमाली वल्ली व नारायण वल्ली वा व वा (अप्रकाशित) टीका में आहुटि पाछी वळिनई' लिखा है, जो सही अर्थ है। उक्त प्रसंग में 'आहुटि लेने की गुजाइश नहीं है। वे सखिया उत्कण्ठा वश जहाँ पर सेज बिछी थी, उस द्वार पर जाकर देखना चाहती थी परन्तु कुल लज्जा वश वे ऐसा न करके द्वार पर से वापस लौट आई तथा भीत के पास कान लगाकर सुनने लगी। अतएव 'आहुटि का हि दो अर्थ लौटना ही उचित है।

अर्थ उदाहरण—

1 अधिक वधू पथ दृष्टि 'अहुटि'।

—पृथ्वीराज रासो 11/33

उनिहार

उनिहार शब्द 'पृथ्वीराज रासो' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

पृथ्वीराज उनिहार इनि।

—पृथ्वीराजरासो 9/53

प्रस्तुत रासो के सम्पादक डा वी पी शर्मा ने उनिहार का हिंदी अर्थ 'अनुहार करके देखकर किया है जो प्रमगानकूल नहीं है। 'उनिहार' शब्द का वास्तविक अर्थ आकृति समान' होता है। राजस्थान में बोल चाल की भाषा में भी—देख्या धारो उणिधारा—जसे प्रयोग प्रचलित है। 'चेहरा आकृति' के आधार पर लाक्षणिक अर्थ समान भी किया जा सकता है।

अर्थ उदाहरण—

1 नहीं य चंद उनहारि।

—पृथ्वीराजरासो 9/97

2 अभियानद तणो उणहारि।

—गीत गणजी महडू

3 वरनिजेनि 'उनिहार' वह ।

—पृथ्वीराज रासो, 9/42

4 पृथ्वीराज 'उनिहार' हि ।

—वही, 9/43

5 सुषिग पराग हरे 'उनिहार' ।

—वही, 13/104

6 अज्ञपात्राप 'उणिहार' एह ।

—पीरदान प्रभावळी, पृ 35

रूप भेद— उणिमारो, उणिहारो

उळखउ

'उळखउ' शब्द 'वीसलदेव रासो' के माध्यम से चर्चा में आया है ।

यथा—

निठि दिठि नवि उळखउ ।

—वीसलदेव रासो 143/5

प्रस्तुत 'रासा के सम्पादन' डा तारकनाथ अग्रवाल ने 'उळखउ' शब्द का हिन्दी अर्थ 'देख सकना' लिया है जो प्रसंगानुक्त नहीं है ।

'ओळखणा' राजस्थानी भाषा के साहित्य एवं साधारण बोल चाल की भाषा में रात में अत्यधिक होने वाला क्रियापद है, जिसका हिन्दी अर्थ 'पहचानना' होता है ।

अर्थ उदाहरण—

रूपभेद—ओळखिउ, ओळखो, ओळख

ऊडळ

'ऊडळ' शब्द 'अचळदास गोर्धा री वचनिवा' के माध्यम से प्रकाश में आया है । यथा—

अधरि किणि अविद्य आभ कुण 'ऊडळ' आणइ ।

उवहि कुण उल्लघयइ, ववण जळ सहया जाणइ ॥

—अचळदास खीची री वचनिका, पृ 65

प्रस्तुत 'ऊडळ' शब्द समी प्रकाशित कृतियों में अशुद्ध मुद्रित हुआ है । प्राचीन लिपि में लिखे गये 'ऊ' को आधुनिक प्रतिलिपिकर्ता अनानवग 'कु' पढ़ लेते हैं । क्यों कि 'ऊ और कु' की लिखावट में ज्यादा अंतर नहीं है ।

'ऊडळ' शब्द का अर्थ होता है—'दोनों बाहुओं को मिला कर बनाया गोल घेरा या 'इस घेरे में समा जाये इतनी वस्तु ।' हिन्दी भाषा में इसे हुआ इसे 'बाहुपाश' शब्द से व्युत्पन्न कर सकते हैं अतः उपयुक्त उदाहरण के द्वितीय चरण का हिन्दी भाषा में होगा— आकाश को कौन बाहुपाश में ले सकता है अथवा भर सकता है ।

परन्तु इस सीधे साधे अर्थ को कतिपय पहरी विद्वान मानने के लिए तैयार नहीं हैं । राजस्थानी भाषा के अन्वेषक श्री रावतजी सारस्वत ने अपने एक लेख (परिपद पत्रिका वृ 23 अं 3) में इस शब्द पर किये गये मेरे बाहुपाश अर्थ को अस्वीकार करते हुए लिखा है— यहाँ 'ऊडळ' का अर्थ 'बाहुपाश' किया गया है जो ठीक नहीं है । आकाश को बाहुपाश में भरने का कोई तरीका नहीं है । आकाश को टिकाये रखने (गिरने से बचाने) के लिए हथेलियों को ऊपर करने की आंगिक क्रिया की आवश्यकता है । देशी नाम माला (1/129) में 'ऊडळ' को देशी मान कर इसका अर्थ मच, मकान और उच्चासन किया गया है । पाइय सहमहाण्णवो (भा 190 174) में भी यही अर्थ है । हथेलियों को ऊपर करके बनाया गया यह 'उच्चासन' ही 'ऊडळ' (उच्च मडल) होना चाहिए । इस अर्थ में लकड़ी आदि के सहारे से किसी भारी वस्तु को टिकाये रखना भी ऊडळ की परिभाषा में आ सकता है । (पृ 162)

इसी प्रकार इस शब्द 'ऊडळ' को लेकर राजस्थानी कोषकार आ बंदीप्रसाद साकरिया ने (अपने एक पत्र में) लिखा है—आकाश सवत्र है । चिदाकाश है घटाकाश है । किन्तु वीरो के आकाश की कल्पना ऊपर की गई है । लोचमायता भी आकाश के ऊपर होने की ही है । यही क्यों—खुण भी सातवें आसमान में अपना टेरा लगा कर विराजे हुए हैं । आकाश सत्य के बल पर बिना घबे ठहरा हुआ है । इससे मालूम होता है कि वह कृतदाकर घन

पदाय है। नहीं तो गृह में ऐसी कल्पना क्यों की जाती। खैर, उनका विज्ञान उनके पास है, वह सच्चा है या काल्पनिक—यह भी वे ही जानें। हमें तो उनकी वही हुई बात को स्पष्ट मात्र करना है।

वीरों का आकाश गिरने लगता है तो वे अपनी मुजाबो का ऊँची करके हथेलियाँ फलाकर उसे वही घाम लेते हैं। आकाश के वायुमय में वे इतनी हीन कल्पना तो शायद नहीं करते कि उसको बाहुपाश¹ में समाये जितना या 'गोद में समाये जितना छोटा बना देते। (आधार ढिगती मुज अबरि 22/17)

उपयुक्त दोनों विद्वान् देशी नाममाला तथा पाइय सद् महाण्णय के नाम-साम्य के चक्र में घूब कर भ्रमित हो गये हैं। उन्हें 'आकाश का बाहुपाश में भरने की कल्पना हीन भावना एवं असंगत प्रतीत होती है तथा गिरते हुए आकाश के नीचे ठेगा (सहारा) लगाने की सही। नाम-साम्य के आधार पर इस प्रकार की अनेक कपाल कल्पनाएँ प्रकल्पित की गई हैं। राजस्थानी भाषा के हिंदी टीकाकर तो प्रायः इस भ्रम में भ्रमित पाये जाते हैं।

'ऊडळ' गावों में घास के माप के लिए आज भी प्रचलित है। चार ऊडळ का एक मन (चालीस सेर) घास होता है जिसे मारा कहा जाता है। इस प्रकार के दश भारों से एक बलगाड़ी का बोझ होता है। गुजराती के 'जोडनी कोश' में 'ऊडळ' का यही अर्थ दिया गया है। अब रही बात आकाश को बाहुपाश में भरने की 'तुक्' अथवा 'हीन भावना' की। इसके सबब में मैं एक नकारात्मक उक्ति प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत कर रहा हूँ ताकि इस भ्रम का निराकरण हो सके।

मरीज नहीं आभ सू बाध भोळ।

—नागदमण, प 70

अर्थात्— 'हे भोले! आकाश से बाहुपाश नहीं भरना चाहिए।' इस उद्धरण में प्रयुक्त 'बाध' एवं 'ऊडळ' समानार्थी हैं। परंतु दशमे घोटा-सा अंतर भी है। 'बाध' में दोनों बाहुओं का घेरा छोटा या बड़ा किया जा सकता है, क्योंकि इसमें दानों हाथों की अंगुलियों को परस्पर जाड़े रखना आवश्यक नहीं है जब कि 'ऊडळ' में बाहुओं का घेरा अंगुलियों को मिलाकर बनाया जाता है, ताकि उसके माप में अंतर न आये।

अथ उदाहरण—

1 समस्या इसा 'ऊडळ' आभ साहै।

—विडिया जग्गा वचनिका, प 180

- 2 हाबलोह गटश्रीस, आभ उपाड ऊडळ ।
—गजगुण रूपक बध, पृ 77
- 3 ग्रहे आभ 'ऊडळा, रहे भीडिया वगत्तर ।
—राजरूपक, पृ 98
- 4 आभ समाहै 'ऊडळ', दीठ दळ करार ।
—वही, प 137
- 5 'बाध' घला असमान सू लज हाध अलतारे ।
—धीरमायण पृ 187
- 6 ल छळ झल ऊठिया घल्ले बाध निहण ।
—राजरूपक, प 72

ऊचाळउ

'ऊचाळउ' शब्द डोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा का विषय बना है । यथा—

1 पिगळ 'ऊचाळउ कियउ नळ नरवर बइ देस ।

2 ऊचाळउ अवरसणउ कइ फाकउ बइ तिहु ॥

— डोला मारू रा दूहा दो 2 तथा 60

सम्पादक त्रय (डा रामसिंहजी पारीवजी व स्वामीजी) ने 'ऊचाळउ का अथ प्रयाण या कूच देश याग परदेश गमन (शब्दकोश पृ 567) किया है तथा टिप्पणी में—स उच्चलन प्रा उच्चालो (विशेष भी पृ 404) — बताया है । डा माताप्रसादजी गुप्त मवादक त्रय के अभिमत को अस्वीकार करते हुए लिखते हैं— उचाळ < ऊचाळ < उत + चालय है । अवधी क्रिया उचार = उषाडना । इसी का अर्थ रूप है उत + चल का उच्चल या ऊचल होगा जिसका अवधी रूप उचर — उषाडना है ऊचाल नहीं ।'

यों का द्रविड प्राणायाम को श्री गुप्तजी से सीखे । सीधे सादे बोन चाल में प्रयुक्त शब्द को घुमा फिराकर 'उषाड फेंका है, जिसका प्रयोग से कोई ताल मेल नहीं है ।

‘ऊचाळो’ है तो ‘उत्-+चालय’ ही, परंतु इसका राजस्थानी में प्रयोग अपना स्थान छोड़कर अन्य स्थान के लिए गमन’ अर्थ के लिए होता है। हिंदी में इस शब्द का पर्यायवाची नहीं है अतः व्याख्या से ही काम चलाना पड़ता है।

ऊजासडउ

ऊजासडउ ‘शब्द ढोलामारू रा दूहा’ के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

मळमत्तद ‘ऊजासडउ’, ध इण केहइ रग।

धण लीजइ, प्रीमारीजइ, छाडि विहाणउ सग ॥

—ढोलामारू रा दूहा, 632

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने ऊजासडउ का हिंद अर्थ ‘उजाड जगह’ दिया है, जो अयुक्त है। कदाच संपादकों ने उक्त पाठ का ‘उजाडसड’ पठ लिया है। वस्तुतः ‘उजासडउ’ शब्द का हिन्दी अर्थ ‘प्रकाश’ होता है। और उपयुक्त उद्धरण में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा— ‘थल पर प्रकाश है’।

ओळग

‘ओळग’ शब्द ‘अपलन (स) से उत्पन्न होता है, जिसका अर्थ होता है,—सेवा, चाकरी, सिद्धमता। यह शब्द राजस्थानी साहित्य, लोक साहित्य तथा साधारण बोल चाल की भाषा में समान रूप से व्यवहृत होता है।

सध्यकाली राजपूत सभ्यता में ‘चाकरी करने के लिए’ ईंडर अथवा पूर्वी प्रदेशों की ओर जाना एक महत्वपूर्ण बात मानी जाती थी, अतः इसको आधार बना कर लोक-साहित्य में अनेक लोकगीतों का सजन हुआ। जिनमें विरहनी नायिकाओं की मनोदशा का सटीक वर्णन हुआ है। ‘हमक चाकरडी

ढोला ! बडाई वीरन मेल, हमव चौमार ढोला घर रवोजी !' जैसे गीता स साहित्य मरा पडा है ।

'चाकरी' चाहे रागा की हा, चाहे ठाकुर की चाकरो, चाकरी ही है । नाइया को बुलाकर 'खिजमत' करवाते हैं, यह उनके द्वारा की गई सेवा ही है । इसी तरह 'ढोली' अथवा 'ढोली' ओळगते हैं तो वे भी अपनी चाकरी ही बजाते हैं । इस प्रकार विभिन्न सेवा कार्यों के लिए 'ओळग' शब्द व्यवहार मे लाया जाता है ।

अय उदाहरण—

1 आतम तुझ पासइ अणइ, 'ओळग रुडा रख ।

—ढोला मारु रा दूहा, 114

2 इ द्रादि देव कर 'ओळग ।

—हरिरस

3 आई ओरगि राजा के रहा ।

पद्यावत, 446/1

4 आवइ परि 'उळग मिसइ ।

—माघ धानळ काम कदळा, पृ 13

5 बारह वरस उळग रह्यउ ।

—वीसळ देव रास, 120/11

रूप भेद—उळग, उळग, ओळग, ओलग अउळग ।

ओळग

'ओळग' शब्द वेलि श्री कृष्ण 'रुक्मिणीरी' के माध्यम से चर्चा का विषय बाना है । यथा—

चोटी आळु कुदइ घडसठि चाचरि,

ध्रू पडियइ ऊकसइ घड ।

अनत अनइ तिसुपाल अउझडा'

झड मातर मडियर झड ॥

—वेलि, दाला 121

बेलि के टीकाकार श्री दीक्षितजी ने 'ओझड' का हिन्दी अर्थ 'निरतर' दिया है, जो अयुक्त है ।

'अउपडा' अथवा 'ओझड' शब्द तलवार के प्रहार करने के तरीके से संबंधित है । हिन्दी में इसे 'तिरछा प्रहार' अथवा 'तिरछे' मिटने कहा जा सकता है ।

यह 'ओझडा' शब्द 'वचनिका राठीड रतनसिधजी री' में भी आया है । इसके संपादक श्री रामसिंहजी मनाहर ने 'ओझडा' का अर्थ 'प्रहार' विशेषतः उल्टे हाथ का अचूक वार किया है । उदाहरण के लिए रो सीस खडग री 'ओझडा' देर भूतनाथ री उपायन कियो । (वग मास्कर, पृ 1449), 2 तीं पछ ऊनाहाथरी 'ओपड' सू नाहरराज सिपाह बळी रो सीस उदायो । (वही, पृ 1353) श्री काशीराम शर्मा ने इसका अर्थ 'सीधावार' किया है, जबकि 'ओझडो' का अर्थ उल्टे हाथ का वार होता है, जैसा कि उदाहरण संख्या 2 में स्पष्ट हो जाएगा । (वचनिका, पृ 128)

श्री काशीरामजी शर्मा ने श्री रामसिंहजी मनोहर के उक्त विवेचन से असहमति व्यक्त करते हुए लिखा है—'लिखने हैं—शर्मा ने 'साधावार' किया है जबकि 'ओझडा' का अर्थ उल्टे हाथ का वार होता है, जैसा कि उदाहरण संख्या 2 में स्पष्ट है । उदाहरण है—'ती पछ ऊळा हाथ री ओझडा सू' । उदाहरण तो स्पष्टतः मेरे ही अर्थ की पुष्टि करता है । 'ऊळा हाथ' में विशेषित करना पडा, यह इस बात का प्रमाण है कि 'ओझडा' सामान्यतः 'सीधावार' ही होता है । 'सम्यसाची' तो कहना पडता है, जबकि 'दक्षिण साची' तो सामान्यतः समी होते हैं, अतः उसे विशेषित करने की आवश्यकता ही नहीं है' । (वचनिका सम्पादन, पृ 67 68)

'ओझडा' शस्त्र चलाने का एक विशेष तरीका है । इसके द्वारा 'तिरछा प्रहार' करने का उल्लेख मिलता है । हिन्दी में तो इसे व्याख्यायित ही किया जा सकता है । इसका हूबहू पर्याय हिन्दी में नहीं मिलता है ।

प्राचीन टीकाकारों में भी 'ओझडा' = 'शत्रुमोक्ष विवादे' सुबोध मजरी 'हियारा मूकणरइ विवादेइ' वनमाळी बल्लोवा व बो (अप्रकाशित) तथा 'हियारा र मूकणरइ विवादे' उल्लेख किया गया है । नवीन टीकाकारों ने इस शब्द का मनमाना अर्थ लिख दिया है चाहे वह प्रयोग से मेल खाता हो अथवा नहीं ।

कदळ

कदळा शब्द 'पृथ्वीराज रासो' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

सोइटोडर 'कदळ' ही जुठयो ।

—पृथ्वीराज रासो, 2/13

'रासो' के संपादक डा वी पी शर्मा ने 'कदळ' शब्द का हिन्दी अर्थ 'कदमूळ' एक सामत दिया है, जो अप्रासंगिक है।

'कदळ' राजस्थानी भाषा एक लोक व्यवहार में 'युद्ध, लड़ाई, झगडा के अर्थ प्रयुक्त होता है।

अर्थ उदाहरण—

1 'कदळ दळ उठहि मिरन ।

—पृथ्वीराज रासो, 14/93

2 उछीहन कळह सु 'कदळ' सज्यो ।

—वही, 16/68

3 वाम अनी कदळ सेवीत्यो ।

—वही, 16/46

4 को काम कदळ चढो ।

—वही, 15/32

5 अहि कह कुहू दिन 'कदळ भो ।

—वही, 17/44

6 'कदळ सो जुटिय ।

—वही, 18/72

7 अति 'कदळ करता इळा ।

—राजरूपक, पृ 539

कइर (कैर)

'कइर' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है।

यथा—

करहा इण कुळिगामड्ड, किहा स नागर वेत्ति ।

करि 'कइरी' ही पारणउ, अइ दिन यूही ठेलि ॥

—ढोला मारू रा दूहा, 430

सीधे साधे कइर (कर) शब्द को लेकर हा माताप्रसादजी गुप्त न बड़ी विचित्र बात कही है—'करीर मे ऐसी कोपलें होती ही नहीं है, जिन्हें ऊट चर सके। यह शब्द कदाच 7 स कदर जिस श्वेत खदिर कहा जाता है।' (ना प्र पत्रिका वष 65 अंक 1) यदि हा गुप्तजी कमी राजस्थान आये हात ता उन्हें पता चल जाता कि करो को ऊट खाता है अथवा नहीं। सीधे साधे बहुप्रचलित शब्द को व्युत्पत्ति के चक्कर में डाल कर ध्वनि-साम्य से अर्थ का अनर्थ कर दिया। श्वेतखदिर, जिसे खर' कहा जाता है, कर से भिन्न वृक्ष है। कर ऊटो का प्रिय भोजन है, परंतु नागर वेत्त के पत्तो (पानो) से तो हीनस्तर का ही है, अत उक्त दोहे में उसके स्तर का ही बात कही गई है।

अथ उदाहरण—

1 'कइरी' कूपळ न बिचरू, लघण पडइ पचास ।

—ढोला मारू रा दूहा, 431

2 बीली, बीर, 'कइरा' इगोरा माघव मा फळ एह ।

—बाहूडदे प्रवच, पृ 71

3 ज्यू चित 'कइरा' कूमटा, ज्यू चित सागर फोग ।

—सवद ग्रंथ (अप्रकाशित)

4 आव सरीखा आक गिणि, जाळि 'करीरा' झाडि ।

—ढोला मारू रा दूहा, 432

5 कद मूळ फळ 'कर' पाव रीण प्रतापसी ।

—दुरसा आढा

कपूर

'कपूर' शब्द 'जिण दन चरित' के माध्यम से प्रकाश में आया है।

यथा—

फूल तबोल कपूर, अइसो भोग करावइ घूत ।

—जिणदत्त चरित, पृ 413

प्रस्तुत काव्य के सम्पादक-द्वय—श्रीमाताप्रसादजी गुप्त श्री कस्तूरचंद कासलीवाल ने 'कपूर' या हिंदी अथ कपूर किया है जो समीचीन नहीं है। यह 'कपूर' शब्द 'वचनिका राठीठ रतनसिंह जी महेंद्राससौतरी में भी आया है— तिगिवेळा कपूर बीडा भाइयाँ उब रावाँ कवीमुराँ कू दिया ।— (वचनिका, पृ 112) इससे सम्पादक श्री काशीराम शर्मा ने 'कपूर' का अर्थ कपूर युक्त पान किया है। इसका शास्त्र करते समय ससृष्ट वाला कपूर सम्पादक के ध्यान म रहा है। इसी प्रकार ध्वनि साम्य के आधार पर एक कपूर ही नहीं अनेक राजस्थानी शब्दों को अर्थ करते समय ध्रम जाळ उपस्थित किया गया है। वस्तुतः 'कपूर पान की एक जाति होती है। कदाच यह अर्थ पानों की अपेक्षा स्वाद में भिन्न रहा होगा, अतः राज-दरबार में इसी 'कपूरीपान' का प्रचलन रहा है।

श्री काशीरामजी शर्मा को उपयुक्त अर्थ पसंद नहीं आया। उन्होंने लिखा है ' मैं इसके बारे में कोई प्रतिवाद (श्री शमुसिंह मनोहर द्वारा किये गये अर्थ का) नहीं कर सकता। न मैं पान खाता हूँ न बेचता हूँ। न कविता करता हूँ क्योंकि राजशेखर ने कहा था कवि को पान अनर्थ खाना चाहिए और श्री हृष ने बताया था कि उसे कायकु-जेश्वर रोज दो पान देता है— ताबूल द्वयमासन चलभनेय कायकुजेश्वराद् । मैंने तो साहित्य में पान कपूर पद का प्रयोग देला है और वसा ही लिख देता हूँ। समझता यह था कि जैसे अब पीपरमट डालते हैं, वैसे कपूर डाल दते होंगे ठंड के लिए। (वचनिका का सम्पादन पृ 65)

पान में कपूर डालने का प्रचलन रहा है अथवा नहीं, इसके संबंध में खोज होनी चाहिए। उपयुक्त कपूर शब्द तो पान की जाति के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।

अर्थ उदाहरण—

- 1 अरोघ अघाय किया आचमन
कपूरी प्रहै पान बीडा प्रसन ॥

- 2 फूल तबोल कपूर बहुत ऐसो भोग करावइ घूत ।

—नागदमण पृ 56

—जिणदत्त चरित पृ 413

करल

'करल' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा में आया है ।

यथा—

तीखा लोयण कटि 'करल , उर रत्तडा बिबीह ।

—ढोला मारू रा दूहा, 459

श्री माताप्रसाद जी गुप्त ने 'करल' शब्द को द्रविड प्राणायाम कराते हुए लिखा है—' करल < प्रा करलि < स कदली=एक जातिका हरिण' । (ना प्र प, वय 65, अक 1) परंतु यह अथ क्लिष्ट कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं है । यदि संस्कृत से युत्पन्न करना आवश्यक हो तो 'कर =हाय मे-ल=समा जाये' अर्थात् मुष्टि-ग्राह्य ।

अथ उदाहरण—

1 स्यामा कटि मेखला समरपित

त्रिसा अग मापित 'करल' ।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री, द्वारा 96

' वडि किसी छइ त्रिसा अग । अगइ अयववइ क्रिस पातली छइ । तिण हीअ कारणि मापित करल मूठीयइ ग्राह्य छइ' ।

—नारायणवल्ली बा व (अप्रकाशित)

कहर

'कहर' शब्द महादेव पारवती री वेलि के माध्यम से प्रकाश में आया है । यथा—

एक 'कहर' लाबिया हाय ।

—महादेव पारवती री वेलि, 214

'बेनि के सम्पादन श्रीरायतजी सारस्वत ने 'बहर का हिन्दी अर्थ 'व्यपत्ति' दिया है, परन्तु इसका वास्तविक अर्थ विपत्ति अथवा 'मय' होता है।

अम उदाहरण—

1 तिन 'बहर' गुरापति सद करइ।

—महादेव पारवती री बेलि 255

2 'बहर' भसम ताइ मदन कियइ।

—वही 260

3 पडत मत बड्डे 'बहर'।

—पृथ्वीराज रामो, 46

कहिरी

कहिरी शब्द 'महादेव पारवती री बेलि' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

करछी निजर जोवती कहिरी'।

—महादेव पारवती री बेलि 260

बेलि के सम्पादन श्री रायतजी सारस्वत ने 'कहिरी' शब्द का हिन्दी अर्थ 'नोपी' किया है जो असंगत है। वास्तुतः कहिरी का अर्थ 'तिरछी' या 'टेढ़ी' होता है तथा इसी अर्थ में उपयुक्त उद्धरण में प्रयुक्त हुआ है।

कूर

'कूर' शब्द 'नाथ सिद्धों की बानिया' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

कूर कपूर तुम्हे जीभता ह्यो राजा।

—नाथ सिद्धों की बानियाँ पृ 20

'नाथ सिद्धों की बानियाँ' के सम्पादन में श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने 'कूर' का हिन्दी अर्थ 'कूर' दिया है, जो प्रसंगानुरूप नहीं है। सम्पादन

महोदय की दृष्टि संस्कृत के 'शूर' शब्द पर रही है, पर तु उन्होंने भोग के विषय में जरा भी ध्यान नहीं दिया। क्योंकि 'शूर' कोई खाने की वस्तु नहीं है। वस्तुतः यह 'कूर' शब्द एक प्रकार की मिठाई से संबंधित है। गेहूँ अथवा बाजरी का आटा घी में सेंक कर उसमें शक्कर मिला देने से यह 'कूर' बनती है। वतमान में भी यह गावों में बनायी जाती है और यहाँ की प्रसिद्ध देवियाँ 'बायाजी' के भोग लगाते हैं।

अर्थ उदाहरण—

1 हूँ सतिमामा के घरि गयउ, 'कूर' न पायो भूखउ मयउ ।

—प्रद्युम्न चरित, पृ 402

2 भोजनि 'कूर' करबुलउ आबुलउ रिहू लहेस ।

—असत विलास. 46

केवा

'केवा' शब्द 'बेलि महादेव पारवती री' के माध्यम से प्रवेश में आया है। यथा—

'केवा' मागण बडउ करूर ।

—महादेव पारवती री बेलि, 209

'केवा' शब्द का हिंदा अर्थ 'बर, प्रतिशोध, बदला' होता है। कदाच इसी शब्द के आधार पर 'केवी'— शत्रु' शब्द बना है। वतमान कालिक बोल चाल की भाषा में भी 'केवा' इसी 'बर' के अर्थ में प्रयोग में लाया जाता है।

अर्थ उदाहरण—

1 काळीनागरा काहूँ सभाल केवा ।

—तागदमण, 13

2 काकीदरा साथ खगाधीम काढवा केवा ।

—प्रा रा गी, भा 1, पृ 209

3 पातसाहा ताड केवा' बहोड थापरा पाणां ।

—हस्तलिखित गीत

4 नबीला नवा पुराण केवा कमो न बीसमे कुलमीड ।

—प्रा रा गी भा 2, पृ 66

केवी

'केवी' शब्द विलि श्रीवृष्ण हनिमणो री' के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

कामणि कहइ वाम, बाल कहइ 'केवी',
नारायण कहइ अवर नर।
वेदारथ इम कहइ वेदवित,
योग तत्व जोगेसवर ॥

—वेलि, द्वाला, 76

वेलि के नवीन सम्पादक श्री दीक्षितजी ने 'केवी' का अर्थ 'कोई अर्थ केऽपि किया है, जो समीचीन नहीं है। सम्पादक त्रय तथा श्री दीक्षितजी ने इस शब्द को केऽपि के ध्वनिसाम्य के आधार पर इसका अर्थ प्रकल्पित किया गया प्रतीत होता है। इस शब्द का व्यवहार राजस्थानी भाषा के वाक्यों में बहुतायत से हुआ है। 'केवी का वास्तविक अर्थ 'क्षत्रु दुजन' होता है।

अर्थ उदाहरण—

1 कमण करे जुष तुसा 'केवी'।

—पीरदान प्रयावली पृ 19

2 'केवी दुजन' देखी कहई ए बाल।

—नारायण वल्ली, टीना (अप्रकाशित)

कोड

कोड शब्द 'रास और रास बयो काव्य के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

कपिय किन्नर 'कोडि' पडिय हरगण हडहडिया।

—रास और रासा बयो काव्य, 129

'कोडि' शब्द का सम्पादक द्वय (श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा ने 'गोद मे' अर्थ किया है, जो असंगत है। सम्पादक द्वय का ध्यान स के 'कोड' शब्द की ओर चला गया प्रतीत होता है। इस प्रकार अर्थ स्थलों पर भी ध्वनि साम्य के परिणाम स्वरूप अनेक अनर्थों की सृष्टि हुई है।

'कोड' राजस्थानी-साहित्य एष बोलचाल की भाषा में समान रूप से व्यवहार में आता है। इसका हिंदी अर्थ 'प्रसन्नता, उत्साह, चाह' किया जाता है।

अपभ्रंशहरण—

1 मनह सकोडी मानवी, सोहई तृष्ण सरीर।

—ढाला मारू रा दूण, 232

2 सामूजा म्हन पीवर जावण रो 'कोड'।

—एक प्रसिद्ध लोक गीत।

कोपर

'कोपर' शब्द 'वचनिका राठीड रत्नसिंघजी महेसदासोतरी' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

अरज्जहतिज्जह घान अमघ।

कट कर 'कोपर' पालिज कघ ॥51/14

—वचनिका पृ 344

'कोपर' शब्द पर हिन्दी-व्याख्या प्रस्तुत करते हुए वचनिका के सम्पादक श्री गमुसिंहजी मनाहर ने लिखा है 'कोपर (स कपूर) = कोहनी, श्री बागीराम शर्मा ने इसका अर्थ 'कोपड़ी' किया है, जो निराधार है।'

श्री मनाहर ने उपरोक्त अर्थ को अस्वीकार करते हुए श्री बागीरामजी शर्मा ने लिखा है— मेरा आधार यह है कि नारियल और कोपड़ी दोनों का प्राच्यक मलमालम का 'कोपर' शब्द नारियल के साथ हुआरो अर्थ पूर्व उत्तर भारत में भी आ गया। कवियों ने इसका प्रयोग भी कर लिया। पर गमुसिंह जी का विश्वास ही नहीं होता कि 'कोड वीर' ऐसा ही सचता है जो दूसरे के मिर पर धार करने का साहस करे। इसलिए उहने केवल हाथ, कुहनी, कंधे और कन्धे के कटने की बात स्वीकार की। यदि कवि 'कोपर' को जगह मिर निग देना ता उम अध्याय मान लने जगा— 'ढाला' मिर धाराळ' में माना, अर्थ कोड स्थाना पर भी माना। पर ये यह नहीं मान सकते कि कोई वीर किना और के मिर पर प्रहार करने का माहम जुग पावण। मुझ ता विश्वास

है, वीरो पर, अत मीने 'खोपडी कटवादी।' (वचनिवा का सम्पादन, पृ 91 92)

यद्यपि श्री काशीरामजी शर्मा ने 'कोपर' का 'खोपडी' अर्थ ठीक किया था, परन्तु सस्कृत से अनुपन्न करने के चक्कर में श्री शम्भुसिंहजी ने निराधार बता दिया। राजस्थान में नारियल से सम्बन्धित शब्द 'खोपरा' बहुत प्रचलित है। राजस्थानी कविया ने इस शब्द का प्रयोग 'खोपडी' अर्थ में ही किया है।

अथ उदाहरण—

1 कसबई ताइ 'कोपट' कचरीता डोहइ।

—महादेव पावती री वेलि, 212

2 लणमट 'कोपट' निपट खळ।

—पावू धाघल रो छद 47

3 षटक 'कोपटा'।

—गोगजी रा रसावळा, 23

4 कर घाय 'कोपरा' उड खोपरा अढकर।

—रघुवर जसप्रकास भा 3 पृ 255

5 कुटक्क 'कोपर' कथ कपाळ।

—गजगुण रूपक कथ पृ 135

6 बडि 'कोपर' कथ बगत्तर, अस्सि अन असवार।

—वि है रासो, पृ 86

रूपभेद—कोपट, कोपटा खोपट

कोरड

कोरड शब्द गोरखवानी के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

हड ब्रह्मड चहोडिया मानू वेस्या अन।

कोई कोई 'कोरड' रह गया, यू भाख नाथरतत्र ॥

—गोरखवानी स 211

प्रस्तुत 'वानी के सम्पादक डा पीताम्बरदत्तजी बडधवाल ने 'कोरड' का हिन्दी भावाथ 'कोरा' लिया है जिससे वक्ता का तात्पर्य सिद्ध नहीं होता है। वैसे डा बडधवालजी ने उक्त पूरी 'सवनी का विचित्र अर्थ किया है— 'रतननाथ कहता है कि मैं मानता हूँ कि समस्त ब्रह्मांड वेश्या (माया) के अन्न पर पलता है। इसलिए वह उसके शासन (चहोडिया) में है। कोई बिरला ही उससे कोरा है। गढवाली बोली में चहोडना का अर्थ चित्त पट और अगल बगल चारों तरफ से पीटना है।'

शब्दों के वास्तविक अर्थ का ज्ञान न होने पर इस प्रकार का अर्थ करना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। राजस्थानी भाषा के काय तो इस प्रकार के अलूल जलूल अनर्थों से भर पड़े हैं। नहीं तो उक्त सवनी में कही पर भी दुस्रहता नहीं है। यथा—

'रतननाथजी कहते हैं—मानो माया रूपी वेश्या ने ब्रह्मांड रूपी हाडी में जीव रूपी अन्न (सिद्ध करने हेतु) चढा दिया। उसमें से कोई कोई जीव कोरड (असिद्ध) रह गये अर्थात् माया के मनोनुकूल सिद्ध नहीं हुए।'

उदाहरण पर भी जब अनाज का कोई दाना पलता नहीं है तो उसे 'कोरड' कहते हैं। कोरड = असिद्ध (बिना बीजा)।

सेडा

'सेडा' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

सेडे सेडे ठीकरी, निकमी मति निहार।

—राजस्थानी नीति दूहा, 92

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'सेडे सेडे' शब्द का अर्थ 'धूरे धूरे पर' लिया है जो भ्रात है।

सेडा राजस्थानी का बहु प्रचलित शब्द है और इसका अर्थ 'गाव' होता है।

अर्थ उदाहरण—

1 ऊजड 'सेडा' फिर बगै, निरघनिया घन होय।

—प्रसिद्ध लोकोक्ति

गजावाग (गजवाग)

गजवाग' शब्द 'वचनिका राठीड रतनसिंहजी महेसदासोतरी के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

फर्बे वग्गपती, अगदत फौज्ज ।

गजावाग वाजे विव सीस गग्ज ॥58/12

—वचनिका पृ 155

वचनिका के सम्पादक श्री शमुसिंहजी मनोहर ने लिखा है—'गजावाग = गजवागे, अकुश विशेष जो सूय के प्रकाश में चकाचौंध उत्पन्न करते ऐसे प्रतीत होते थे जैसे विजयियाँ चमक रही हो। यहां पर डा टमीटरी व मपाकद्वय (वु रघुवीरसिंहजी व श्री वाशीरामजी शर्मा) क्रमशः 'गजा वाजि एव 'वाज' पाठ माना है। प कृपागकरजी की प्रति में भी यही पाठ है। परंतु दो प्रतियों (डा टमीटरी द्वारा निर्देशित F P) में 'गजावाग पाठ है, जो इसे शुद्ध प्रतीत हाता है। श्रीरावत सारस्वत की प्रति में भी गजावाग पाठ है। फलतः हमने डा टमीटरी द्वारा निर्देशित I P प्रति तथा श्री रावत जी की प्रति में उपलब्ध उत्त पाठांतर को ही स्वीकार किया है। तथा 49/6 में प्रयुक्त 'गजराजां राजान के गजावाग के विषय में श्री शमुसिंहजी मनोहर ने लिखा है— गजवाग = अकुश विशेष जो हाथी को चलाने या उसे नियंत्रित रखने के काम में लाया जाता है। इसका अग्रभाग तुकीला हाता है एक छार के समीप एक मुड़ा हुआ अद्वचद्रावार काटा उससे जुड़ा होता है जिसे हाथी के कान में डालकर खींचन पर या तो हाथी चलने लगता है या महावत की इच्छानुसार समय हा जाता है। इसे आजकल की शब्दावली में अकड़ी कहते हैं। श्री वाशीराम शर्मा ने कदाचित् 'वाग' का मन्थ सञ्चत वत्सा से जोड़त हुए इसका अर्थ 'हाथी का मुह बाधने वाला' कर दिया है जो निराधार है। 'आईने अकबरी के अनुसार स्वयं बादशाह अकबर ने यह नामकरण किया था। आईने 45 में हाथी का सामान क्षीपन के अंतगत अबुलफजल लिखता है—

27 अकुश—लोहे का एक छोटा छह है। सम्राट ने इसका नाम गज वाग रखा है। इससे हाथी को अधिकार में रखते हैं और जहा चाह खड़ा कर लेते हैं। (आईने अकबरी, पृ 122)

श्री शमुसिंहजी मनोहर के द्वारा की गई 'गजवाग की व्याख्या से श्री वाशीरामजी शर्मा सहमत नहीं हैं। वे लिखते हैं— जी हा हमने वत्सा या

लगाम से (गजवाग का अर्थ) जोड़ा है। हम लोग भी अपनी 'जबान पर लगाम' लगाना सीखा जाए तो पाठको का मला हा। घोड़े की लगाम, ऊँट की नकेल (मोहरी), हाथी के अकुश, या गजवाग सभी का एक ही उद्देश्य है, पशु को नियंत्रण में रखना। प्रस्तुत (49/9) प्रसंग में राजाओं रूपी गजराजों को बश में करने वाले रतन का वणन है अतः वण्य न तो अकुश है और न बल्गा। वण्य है बग में करने की क्षमता। व्यथ की चगचगाहट बयो। पर 'अकुश' अर्थ ठीक नहीं। प्रमाण है शमुसिंहजी का ही उदाहरण—गजवागा खैचे छ—लगता है कोई रस्सा है। (वचनिका का सम्पादन, पृ 64)

श्री काशीरामजी का अर्थात् 'बल्गा ठीक है पर वह कोई रस्सा नहीं है, है तो लोहे वाला अकुश ही। श्री शमुसिंहजी मनोहर ने 'अकुश' को कान में डालकर खींचने का लिखा है, यह भी अनुमानाश्रित ही है। 'अकुश' का प्रयोग में लाने के लिये हाथी के बान के पीछे एक गड्ढा (क्षत) होता है, उसी में अकुश लगाया जाता है। इसका मुड़ा हुआ भाग भी इसी गड्ढे में डालकर खींचा जाता है। इतने बड़े डील डोल वाला पशु अकुश के प्रयोग से धरनि चिघाड़ने लगता है और छोटे से आदमी के बशवर्ती हो जाता है।

अर्थ उदाहरण—

1 गजवाग मत्स्य भैंगला, बलकत बीजक बदल्ला।

—गजगुण रूपकबंध, पृ 72

2 पीलवाण बूमाथला माथ पगारा अगूठा चलाव छै। गजवागा खैचे छ। घत्ता घत्ता करे छ।

—रासा सग्रह, भा 1 पृ 41

गोरू

गोरू शब्द 'महादेव पारवती की बलि' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

'गोरू' हुबहु मुख घास ग्रहइ।

—महादेव पारवती की बलि, 380

बलि के सम्पादन श्री रावतजी सारस्वत ने 'गोरू' शब्द का हिंदी अर्थ कायर किया है, जो सही नहीं है।

'गोरू' शब्द का अर्थ 'गाय' होता है। उपयुक्त उद्धरण में यह शब्द 'गाय' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। 'बंगाल प्रदेश में यह शब्द 'गोरू', गाय के अर्थ में व्यवहृत होता है।

चवणो

'चवणो' क्रि प का प्रयोग पृथ्वीराज रासो के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

1 द्विजवर चवर्हि' आसिप वेद ।

—पृथ्वीराज रासो, 2/61

2 'चवत

—पृथ्वीराज रासो,

रासो के सम्पादन डा बी पी शर्मा ने 'चवत' का हिन्दी अर्थ 'चब चवात' है दिया है, जो समीचीन नहीं है। यह राजस्थानी साहित्य में बहु प्रयुक्त त्रियापद है, जिसका हिन्दी अर्थ बहना लिया जाता है।

अर्थ उदाहरण—

1 गह गह राज चब सब सूर ।

—पृथ्वीराज रासो 11/7

2 'चवा' बाळ देर किंसु बाळ छेड ।

—नागदमण, 41

3 औ चद्रमा ऊमो 'चव ।

—पीरदान ग्रथावली, पृ 11

चाचर

'चाचर' शब्द महादेव पारवती री बेलि के द्वारा प्रकाश में आया है।

यथा—

चद्र प्रहास खलता 'चाचर' ।

—महादेव पारवती री बेलि, 193

‘वेलि’ के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने ‘चाचर’ शब्द का हिंदी अर्थ ‘सिर’ दिया है। कदाचु सम्पादकजी का ध्यान ‘चाचरो’ शब्द की ओर चला गया दृष्टिगाचर हाता है। ‘चाचरो’ का अर्थ ‘कपाल’ होता है, परंतु उपयुक्त उद्धरण न प्रयुक्त ‘चाचर’ इस शब्द से भिन्न है। ‘चाचर’ का वास्तविक अर्थ ‘युद्ध’ होता है तथा साथ ही यह एक प्रकार का नृत्य गीत भी होता है। उपयुक्त उद्धरण न यह ‘युद्ध’ के अर्थ न प्रयुक्त हुआ है।

अर्थ उदाहरण—

1 चोटियाळी कूदइ चौसठि ‘चाचरि’ ।

—वेलि श्रीकृष्ण कविमणी री, 121

2 ‘चाचरि’ गून खमइ कुण चोट ।

—महादेव पावती री वेलि, 258

चाड

‘चाड’ शब्द ‘राजस्थानी नीति दूहा’ के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

जो पर चाडा’ आगला, भीत करीज ताह ।

—राजस्थानी नीति दूहा, 39

प्रस्तुत दोहा के संपादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने ‘परचाडा’ का अर्थ ‘दूसरो पर आक्रमण’ किया है, जो भ्रान्त है।

‘चाड’ अथवा चडु का अर्थ ‘सहायता’ होता है अतः ‘परचाडा’ का अर्थ होगा ‘दूसरो की सहायता के लिए’। उक्त उद्धरण में यही अर्थ अभिप्रेत है।

अर्थ उदाहरण—

1 महामदध असुरा, सुरध ‘चाड’ मारणा ।

—रघुवर जस प्रकाश, पृ 262

2 सोमनाथनी ‘चाड’ करजे ।

—काहड़दे प्रवच, 27

3 श्रीमाळी नइ ‘चाडइ’ मूवा ।

—वही, 125

विशेष—‘चाड’ व चडड का दूसरा अर्थ ‘इच्छा’ भी होता है।

चास

'चास' शब्द राजस्थानी साहित्य एवं व्यवहार की भाषा से समान रूप से बोला जाता है। परंतु इस शब्द के कम मात्रा में प्रयोग होने से इसके मूल अर्थ को तोय मूल से गये हैं तथा साथ ही इसके अर्थ में विस्तार भी हुआ है। उदाहरणार्थ 'रणमल्ल छद' के इस पद्यांश को लिया जा सकता है—

वरिवहयानळ शाळ समद
तुमेछ न आपू चास किमिद ।

—रणमल्ल छद पृ 28

प्रस्तुत छद की सम्पादिका श्री सरिता गहलोत ने उक्त पद्यांश का हिंदी अर्थ इस प्रकार किया है— मले ही सागर की अग्नि (बडवानल) शांत हो जावे (पर मैं रणमल्ल) तुम यवन (म्लेछ) को हल से विदारित भूमि रेखा (चास) जितनी भूमि भी किसी प्रकार से नहीं दूंगा।'

उपयुक्त हिंदी भाषा देखने पर प्रतीत होता है कि—चास हल की नोक से चिरे जितनी भूमि को कहते हैं। पता नहीं सम्पादिका ने यह अर्थ किस आधार पर किया। 'चास' शब्द 'भूमि' के पर्यायवाची के रूप में 'डिगल कोप' में आया है अतः इसमें सशय की कोई गुंजाइश ही नहीं है। असमिया भाषा में 'चासा कृपक को कहते हैं अतः चास, कृपि योग्य भूमि हुई'। राजस्थानी बोल चाल में—आवी उणरी चास वास देख आवा। यहाँ पर भी चास का तात्पर्य कृपि योग्य भूमि' एवं 'वास का तात्पर्य 'घर' से है। वस वतमान में इस शब्द मुग्ध वा व्यवहार हाल चाल अथवा सुख शांति के रूप में भी किया जाता है जो इस शब्द का अर्थ विस्तार है।

चूप

'चूप' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

सब कुछ प्यारी है उद, अपनी अपनी चूप'

—राजस्थानी नीति दूहा, 109

प्रस्तुत दोहो के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'चूप' शब्द का हिंदी अर्थ 'रुचि, प्रेम' दिया है, जो केवल अनुमानाश्रित है। 'चूप' का हिंदी अर्थ 'चतुराई', 'सज्ज घज्ज' होता है तथा उपर्युक्त उद्धरण में यह 'चतुराई' अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

चोज

'चोज' शब्द 'महादेव पारवती री वेलि' के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

दीवाण तणउ चोज देखता ।

—महादेव पारवती री वेलि, 120

वेलि के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने 'चोज' का हिंदी अर्थ 'प्रताप' दिया है, जो प्रसंगानुकूल नहीं है।

'चोज' शब्द का हिंदी अर्थ 'शोभा', 'उदारता' होता है। उपर्युक्त उद्धरण में यह शब्द 'शोभा' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अर्थ उदाहरण—

1 मुगलन जाण गौदया चुगल न जाण 'चोज' ।

—राजस्थानी नीति दूहा, 799

छछाळ

'छछाळ' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

घम्म घम्मतइ घूघरइ पग सोनै री पाळ ।

मारू चाली मन्दिरे, जाण छूटो 'छछाळ' ॥

—ढोला मारू रा दूहा 539

'छछाळ' शब्द का सम्पादक अथ (डा रामसिंहजी श्री सूयकरणजी पारोब व स्वामीजी) ने हिंदी अर्थ लिखते हुए इसे— 'छछाळ' > अथ छिछोळ = छोटी घारा [दे ना मा 3 27] अर्थात् 'मानो पवारा छूटा हा' ।

बताया है, परन्तु इस अर्थ की शब्दों के साथ कोई सगति नहीं है। 'छछाळ' हाथी के पर्यायवाची शब्दों में डिगळ कोप म भी आया है।

अर्थ उदाहरण—

1 अनळ पख चार 'छछाळ' आली।

—डिगळ कोप पृ 77 हाथी नाम

2 प्रलै काल 'छछाळ' छुटा पटाळ
त्रमे डारणा कारणा मूतकाळ।

खिडिया जग्गा वचनिका, पृ 40

3 दिया जस औरगहुवा, छोडो गय 'छछाळ'।

—वही 38

छछोहा

'छछोहा' शब्द 'महादेव पावती री बेलि' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

छोड सह आविया 'छछोहा'।

महादेव पावती री बेलि 81

बेलि के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने इस शब्द का अर्थ 'प्रोषित होकर' किया है जो प्रसंगानुकूल नहीं है। कदाच उ'होने इसे 'सक्षोभ से युतपन्न मान लिया है परन्तु यह देशज शब्द है और इसका मही अर्थ होता है—'त्वरा के साथ अथवा सीघ्र'।

अर्थ उदाहरण—

1 छीणे जाणि 'छछोहा' छुटा।

बलि श्रीकृष्ण हविमणी री, 81

2 सीगण हरे 'छछोहि' अनोसिब घर आपणउ।

—अधलदास खीची री वचनिका, प 42

3 घरा छछोहा चरण घरइ।

—महादेव पावती री बेलि, 263

छरा

'छरा' 'वचनिका राठीठ रत्नसिंहजी माहसदासीत री के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

छल साहित्य प्रहि पाण 'छरा' ।

धस चटिलीध चलवक घरा ॥ 5/3

—वचनिका, पृ 16

वचनिका के संपादक श्री शंभूसिंहजी मनोहर ने 'छरा' शब्द का हिन्दी अर्थ 'हाथ' लेते हुए लिखा है ' श्री काशीराम शर्मा ने इसका अर्थ 'तलवार' किया है जो प्रसंगानुसार अपुक्त है, क्योंकि तलवार का वाचक शब्द यहाँ 'साग' (खड्ग) आ गया है। अतः छरा का अर्थ 'हाथ' किया जाना चाहिए। प्रस्तावित अर्थ में इसके प्रयोग के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1 'छरा' खग ऊनग, सग गणग ममाड ।

—राजगुण रूपकबंध, पृ 141

2 पचातन पळमच्छ, पटके 'छरा' प्रतापसी ।

—महाराणा मगप्रसाद, पृ 113

3 हितवा सवीटिया बलग न होव

छाय माग उपरि 'छर' छात ।

—गीत पचायण सागातत चहुवाण रो

उपयुक्त 'छरा' की व्याख्या को अस्वीकार करते हुए श्री शंभूसिंहजी मनोहर ने लिखा है ' श्री काशीराम शर्मा ने इसका अर्थ 'तलवार' किया है, जो प्रसंगानुसार अपुक्त है ' क्योंकि 'तलवार' का वाचक शब्द यहाँ 'साग' (खड्ग) आ गया है। पर वे स्वयं पृ 17 पर कहते हैं 'छरा' का अर्थ तलवार भी होता है। अर्थात् वे चाहें तो कर सकते हैं, मैं नहीं। हमने तो 'छरा' का 'छुरा' का ही रूप माना था। और हमने छुरी कटारी, खड्ग त्वाडा, गर-बाण, गदा मुत्तर जैसे प्रयोग बहुत देखे हैं ' पर शंभूसिंहजी की विनोयता यह है कि हम 'काला स्याह' कह दें या 'लान सुख' कह दें तो हमें मूल अर्थ देने पर स्वयं एक ही अर्थ में एक ही चरण में तीन शब्दों का प्रयोग भा अनुचित नहीं मानते ।'

—वचनिका सम्पादन, पृ 46

पर तु शब्द अनेकार्थी होता है। उसके अर्थ का निणय प्रसंग देखकर ही किया जाता है। उपयुक्त उद्धरण में 'छरा' शब्द का अर्थ 'हाथ' लेना ही प्रसंगानुसार समीचीन रहेगा। क्योंकि 'तलवार खड्ग मयह हाथ' तात्पर्य प्रकट करने में अधिक सहायक है।

जान

जान शब्द वेलि श्रीकृष्ण रुविमणी री के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

राजा न 'जान' मगि हूताञ्ज राजा
 यहइ सु दीघ ललाट कर ।
 दूरा नयर कि कोरण दीसइ
 घबळागिर किना घबळहर ॥

—वेलि द्वा 41

वेलि के टीकानार श्री दीक्षित जी ने जान शब्द का हिन्दी अर्थ 'यान, सवारी' दिया है जो अयुक्त है। साहित्य के अतिरिक्त यह शब्द साधारण बाल-बाल की भाषा में भी व्यवहृत होता है जिसे हिन्दी अर्थ 'बरात' लिया जाता है।

वेलि की मस्युत टीका सुबोध मजरी के उल्लेख जानीति परिणयन समये स्वजम सबधी बधुवग समुदाय से भी उपयुक्त 'बरात' अर्थ की पुष्टि होती है।

प्रस्तुत जान शब्द के मूल में तो कदाच यान शब्द ही रहा है। जब विवाह के अवसर पर घेरे वाले अपने पारिवारिक जनों को विभिन्न प्रकार के यानों पर बठाकर बेटी बाल के यहा जाते थे तो 'यान जाते हैं' संबोधन से संबोधित किया गया होगा। बाद में 'यान' शब्द का अर्थविस्तार होकर >जान=बरात शब्द रूढ हो गया प्रतीत होता है। इसी शब्द के आधार पर बरपग वाले शक्ति जानी बराती कहताने लगे।

अर्थ उदाहरण—

! मडळीय मिळिया जान हयहीस मगळगान ।

—रास और रामावयी काव्य

जाइ

'जाइ' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है ।

यथा—

पीपळ रोई फल विण फळ विण रोई 'जाइ' ।

—राजस्थानी नीति दूहा, 687

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'जाइ' का हिन्दी अर्थ 'माता मा किया है, जो प्रमगानुकूल नहीं हैं ।

'जाइ' एक प्रकार का पुष्प हाता है जिसके फल नहीं लगते । उपयुक्त उद्धरण में आये 'पीपळ' एवं 'जाइ' दोनों शब्द वनस्पति वाची हैं ।

अर्थ उदाहरण—

1 चदन अगर जाइ ना फूल ।

—काहलदे प्रबध 226

जूजूवी

'जूजूवी' शब्द 'वचनिका राठौड रतनसिधजी महेशदासीत री' के माध्यम से चर्चा में आया है । यथा—

पाढतो पढवेम, अचळावत अवताणसिध ।

जुडियो जण जण 'जूजूवी' मृडियो नहीं महस ॥ 13 ॥

—वचनिका, पृ 283

वचनिका के सम्पादक श्री शमूसिंहजी मनाहर ने 'जूजूवी' = अलग अलग अर्थ देते हुए अर्थ उदाहरण इस प्रकार दिये हैं— । इस विनवती व्याकरणों हवर्गे महिता जाउ गिउं जूजउ 2 जूजूवा निरं बासै जिता हुआ

जीण सिरहैमरा, 3 घटवाजइ 'जूजुवा' सघाण । (उदा क्रमश 1 विद्या विलास पवाडउ, 2 राजरूपक, पृ, 3 महादेव पारवती री वेलि)

श्री काशीराम शर्मा ने इसका अर्थ 'जूव गया किया है, जो निराधार है । इसका एक रूप 'जुआ जूओ भी मिलता है । यथा—

घाउ घाउ पचामृत घाते जण जण पूगो जुआ जुओ (राज वी की भाग 1 पृ 38)

'जूजुआ बदाचित् जुआजुआ का ही सक्षिप्ती श्रुत रूप है, जो समवत 'जुदा जुदा से व्युत्पन्न है । (वचनिका पृ 284)

श्री काशीरामजी शर्मा ने श्री शमुसिंहजी के उपयुक्त विवेचन को अस्वीकार करते हुए लिखा है—' जूजुवा का अर्थ अलग अलग' बताकर चार उदाहरण दिये हैं । उनमें केवल मर्यादा 2 और 3 में वह शब्द प्रयुक्त है और दोनों में अर्थ है—जुझान कि अलग अलग । फिर भी लिखते हैं— (शर्मा ने इसका अर्थ 'जूझ गया' किया है, वह निराधार है ।) (वचनिका का समाप्ति, पृ 84)

अर्थ उदाहरण—

1 भोजन भगति जुगति जूजुइ ।

—सदयवत्सधीर प्रवध पृ 501

2 जाम जाम ताइ भगति जूजुई ।

—महादेव पारवती री वेलि 350

3 पधी वीर 'जूजुआ पघारया
पुर भेळे हुइ कीघउ प्रवेस ।

—वलि श्रीकृष्ण रुविमणी री द्वा 75

पथि=मारगि आगउ पाछइ जुदइ जुदइ चालिबइ करी वीर ।

—वनमाली बल्ली (अप्रकाशित)

जोइ

'जोइ शब्द वेलि श्रीकृष्ण रुविमणी री के माध्यम से चर्चा का विषय बना है । यथा—

जोइ जळद पटळ दळ सामळ ऊजळ,
 घुरइ नीसाण साजि घणघोर ।
 प्रोळि प्रोळि तोरण परठाजइ,
 मडइकिरि तडव गिरि मोर ॥

—वेलि, द्वाला, 40

वेलि के नवीन टीकाकार श्री दीक्षितजी न जाइ' का हिंदी अर्थ 'जा या जो भी, पडाल, स्त्री' दिया है, =सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी पारोवजी व स्वामीजी) ने इसका हिंदी अर्थ 'जो दिया है तथा श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने 'जोई' का हिंदी अर्थ 'देरो जानो' दिया है ।

परंतु प्राचीन टीकाकारों का मत आधुनिक टीकाकारों से भिन्न है । संस्कृत की टीका सुबोध मजरी में जोइ इति स्त्री पर्याय लिखा है, वनमाला वल्ली बालावबोध में जोइ ए स्त्रीरउ नाम पर्याय छइ' उल्लेख किया है तथा नारायण वल्ली बालावबोध में 'जोइ एहवउ नाम स्त्रीरउ जाणिवउ सिंधु मायायइ प्रसिद्ध' बताया है । अतएव उपर्युक्त सभी टीकाकारों के अभिमत एवं प्रसंग को देखत हुए 'जोइ' का 'स्त्री' का पर्याय मानना ही समीचीन है क्योंकि 'जोई (त्रि प) =देखना' यहाँ पर अभिप्रेत नहीं है ।

जौख

जौख शब्द 'वचनिका राठीठ रतनसिंधजी महसदासोत री के माध्यम से प्रकाशित आया है । यथा—

सतखणा सोवन मै आवास गोख जौख चित्राम चित्रसाळा रचाई (30)

—वचनिका, पृ 365

'वचनिका' के सम्पादक श्री काशीरामजी शर्मा ने 'जौख का अर्थ स्त्री (योषिद्) किया है जो प्रसंगानुसृत नहीं है ।

'जौख' का अर्थ 'श्रीठा, मौज', 'आनंद' होता है तथा 'गोख-जौख' शब्द प्रायः साथ ही आते हैं ।

अ-य उदाहरण—

1 गौड कछावा राठवड, गोर्वा 'जौल' करत ।

—राणा अमरसिंह का दोहा, (वचनिका 369)

2 गुमरघारिया मिलै गोलाई, जोघपुर गढ कर' जौला' ।

—सूरज प्रकाश, भा 2, पृ 229

झंलइ

प्रस्तुत झलइ शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना । यथा—

आदीता हू ऊजळो, मुख व्रम ।

झीणा कप्यड पहिरणइ, जाणि झलइ सोत्रम ॥

—ढोला मारू रा दूहा, 463

'झंलइ' शब्द का सम्पादक अर्थ (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने झलकता अर्थ किया है जो प्रयोगानुबल्ल नहीं है । डा माताप्रसादजी गुप्त ने सम्पादक अर्थ के अर्थ को अमाय करते हुए इसे '> प्रा झलइ=सतप्त मान कर 'मानो सोनातप रहा है । अर्थ किया है, जो सगत नहीं है ।

झलइ शब्द का वास्तविक अर्थ— कातिहीन डका हुआ धुमला आदि होता है । इसके अनुसार उपयुक्त दोहे के उत्तरार्द्ध का हिंदी भावाव्य होगा— (मारवणी के) महीन वस्त्र धारण किये हुए है, (ऐसा प्रतीत होता है) मानो (उसका शरीर) धूमिल स्वर्ण हो अथवा आच्छादित स्वर्ण हो ।

अ-य उदाहरण—

1 देव तणो मुख 'झंलइ' दीसइ ।

—महादेव पावती री बेल, 360

2 मयण वयण झालु करी, बइठउ घरि अणाहि ।

—माघवानल काम कदला प्रबध, पृ 6

रूप भेद—झाखो, झाखु ।

विशेष—'झलइ' शब्द का प्रयोग अलूल जलूल बकन के अर्थ में भी किया जाता है ।

भाभी

‘भाभी’ शब्द ‘ढोला मारू रा दूहा’ के माध्यम से प्रकाश में आया है।

प्रथा—

अति घण ऊनिमि अवियउ, ‘भाभी रिठि हाडवाय।

वग ही मलात वप्पडा, घरणि न मुक्कइ पाइ ॥

—ढोला मारू रा दूहा, 257

‘ढोला मारू रा दूहा’ के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने ‘भाभी’ शब्द का हिन्दी अर्थ ‘अत्यंत दिया है जो ठीक है, परंतु टिप्पणों में ‘भाभी’ शब्द की ‘युत्पत्ति ‘दग्ध’ से मानी है, जो सगत नहीं है। श्री माताप्रसादजी गुप्त ने सम्पादक त्रय के उपर्युक्त अर्थ को अस्वीकार करते हुए इसे—‘भाभी > क्षप्त = क्लेश’—अर्थ दिया है, जिसका प्रसंग से कोई मेल नहीं है। केवल ध्वनि साम्य देखकर ही अर्थ का अनर्थ किया है।

‘भाभा व भाभी’ राजस्थानी भाषा में बहुतायत से प्रयुक्त विशेषण है, जिसका हिन्दी अर्थ—बहुत, घना, अत्यंत, सुंदर, उपयुक्त इत्यादि होता है।

अर्थ उदाहरण—

1. भाभी निद्रा थापइ अगि।

—ढोला मारू रा दूहा, परिशिष्ट

2. शिल झूलर मृगाली माल ‘भाभी’।

—अमराजती एकादशी प्रबंध (ह लि)

3. भाभी प्रात घणी विधजाणी, कपतणी कुण सेव कर।

—रघुनाथ रूपक, पृ 102

4. ‘भाभी नीर सरोवर मोटा।

—काहूडदे प्रबंध, पृ 82

5. जोजे करती भाभी बाळ।

—शंकरचन्द्र मेघाणी कस्तूर (पु) पृ 73

6. जिहा जिहा भाभा सड ठड पाणी तिहा दियइ मेतहाण।

—काहूडदे प्रबंध, पृ 10

टाळिमा

टाळिमा' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

घरि बइठा ही आविस्यह, ताखे लियौ लडग ।

तिणमइ लेस्यौ टाळिमा, बाकडमुही विडग ॥

—ढोला मारू रा दूहा, 227

प्रस्तुत कृति के सम्पादक प्रथम (ठा) रामसिंहजी, पारोबजी व स्वामी जी) ने 'टाळिमा' का अर्थ चुने हुए' (पृ 70) किया है तथा टिप्पणी (पृ 489) में टाळिमा (दे) हिन्दी टालना = चुनींदा, 'छटे हुए लिखा है। परंतु डा माताप्रसाद गुप्तजी को इस अर्थ से सन्तोष नहीं हुआ। वे लिखते हैं टालिमा टाल (द) कोमल अवस्था का, किशोर। (बीज बाने से पूव की अवस्था के फल को टाल कहते हैं (प्रा स म से 'टालिमा बना है। (ना प्र पत्रिका, वष 65 अंक 1)

अब डा गुप्त जी का कौन समझाए कि प्रसंग घोडे का है। 'लाखों की सख्या में घोडे लेकर (ध्यापारी) आएंगे, उनमें से चुनींदा घोडे ले लेंगे, सुन्दर से सुन्दर। यहाँ पर किशोर अथवा कोमल अवस्था का क्या प्रसंग। पर डा गुप्त जी तो राजस्थानी भाषा के पीछे लट्टु लेकर पडे हैं और पा स म कोश उनके हृत्थ चढ गया, अब भगवान ही मालिक है।

टीलो

टीलो शब्द भी वचनिका राठौड रत्नसिंह महेशदासोतरी के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

टीलो राजघरा छळ तोनू । 45/29

—वचनिका, पृ 94

वचनिका के सम्पादक श्री शमुसिंहजी मनोहर ने 'टीलो राज = राजतिलक भावाय में राज्याधिकार। श्री शर्माजी ने इसका अर्थ 'शोमित हो' किया है जो निरा अनुमानिक और निराधार है। राजस्थानी में 'टीलो' शब्द संस्कृत तिलक से व्युत्पन्न है जसाकि 'उत्तरत्लाकर, से सिद्ध है,

जिम 'टीलो' (रूप भेद टीसउ) शब्द की व्युत्पत्ति 'तिलक' से दी गई है (उक्तिरत्नाकर, पृ 32) हिंदी व्याख्या प्रस्तुत की है। श्री काशीरामजी शर्मा अपने पुव अर्थ पर डट रहे हुए लिखते हैं ' अब हम उह 'टीलो' शब्द का इतिहास बताएँगे जो उक्तिरत्नाकर जसी सतही पुस्तको मे नही मिलगा। आपका यह कहना ठीक है कि 'टीलो' का पिता 'तिलक' था। पर उस 'तिलक' के पिता नाम हम बताएँ 'तिल' था। सुदरियो के उज्ज्वल नपोला पर तिल होता तो उसकी शोभा कइ गुना बढा देता। ब्रज के कवि ने कहा—

लेखन मे बँदी दिए, आक दस गुनी होत ।

तिय ललाट बदी दिए, अगिनत बढत उदोत ॥

तो, यो तिल से शोभा बढते देख राजाओ का भी मन चला, ऋषिमुनियो का भी चला। बढिया बढिया अगाराग ढूढे जाने लगे। चदन, रोळी, सिंदूर, बेसर आदि के तिलक आविष्कृत हुए। पर हमे तो आज भी देवियो के प्रसंग म 'तिल' से बढकर कुछ नही लगता।—शर्मुसिहजी का मत वे जाने।

ता इस सरस इतिहास के बाद पुन गभीर विषय पर आ जाएँ। 'रतन ने जसवतसिंह से यही कहा कि 'मरण का अधिकार मुझे सोपिए (मरण तणी सावी दे मानू) और आप (राज) घरा की शोभा बढाइए।' शर्मुसिहजी ता इतिहास के विद्वान हैं, यह तो जानत ही हैं कि जसवतसिंह का राजतिलक तो बहुत पहले ही चुका था। (वचनिका का सम्पादन, पृ 62)

श्री काशीरामजी शर्मा ने 'तिलक' से व्युत्पन्न 'टीलो' को मान कर भी अपने 'शोभा बाल अर्थ पर डटे रहें। इसके सबध मे क्या कहा जाये।

राजस्थानी भाषा के काव्यो एक वतमान कालिक बालबाल मे भी 'टीलो' का अर्थ 'तिलक' ही लिया जाता है और यह ठीक भी है।

अर्थ उदाहरण—

1 सहित जोधपुर सूर बळोघर, 'टीलो' रावमालद तणी ।

—उक्तिरत्नाकर पृ 32

2 चन्नगढ तणा 'टीलो' कमल चढता, ताकुआ दिया दरबार 'टीलो' ।

—प्रा रा गी भा 10 पृ 50

3 'टीळउ' काठि सडग दोषउ हृषि, रिणधमोरिवडा हूजउ हाथ ।

—हम्मीरायण पृ 30

4 नळवट टीली' न झाला झबुक, नण बाजळ सामुं रे ।

—रास सहस्रपत्नी, 10

5 निळवट कुबुम पीयळ पीळी माहे मृगमद नीं 'टीली' रे ।

—वही, 25

6 रच मुट्णी स्यांम टीली रट ।

—रघुवरजसप्रवास, पृ 75

डबर

'डबर' शब्द 'वचनिका राठीड रतनसिंघजी महेसणासौतरी' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है । यथा—

घुवारव दव घोम, सेहारव 'डबर' खरा ।

प्रमत्त रौद्रामण विघो, ध्योम विचाळ 'योम ॥33॥

—वचनिका, पृ 63

वचनिका के सम्पादक श्री शमुसिंहजी मनोहर ने 'सहारव डबर' शब्द का हिंदी अर्थ = घूलिसमूह प्रचंड आघी या तूफान जो आकाश को आच्छादित कर देता है किमा है श्री का गीराम शर्मा ने इसका अर्थ घटा अर्थ कर दिया है, जो भ्रान्त है । घूलिसमूह या आघी तूफान के अर्थ में डिगल का योम इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है । यथा—घर हर पाखरा बाजत घुघट, दीह सूझ नहीं खेहर डबर । (दयालदासरी ख्यात, भा 2, पृ 110) 2 खुर रव खग 'डबर' खह, मिलिया जाण बारह मेह । (गजगुणरूपकबध, पृ 121), 3 हालिया थट रजडमर' होय (सुरजप्रवास, भा 1, पृ 229), 4 जिम मद् सवर घूलिडबर' एम अबर ऊछरयो । (वसनास्कर, पृ 3118) । वचनिका, पृ 64

श्री काशीरामजी शर्मा ने श्री शमुसिंहजी के उपयुक्त विवेचन को अमान्य करते हुए लिखा है— दो स 33 में घुए अग्नि और रेत के बादलों से आकाश के भर जाने पर कल्पना की गई है कि ऐसा लगता है मानो आकाश के बीच दूसरा आकाश रच दिया हो । पर शमुसिंहजी 'सहारव डबर' = घूलिसमूह बताकर कहते हैं—शर्मा ने इसका अर्थ घटा कर दिया है जो भ्रान्त है । यह फिर जान बूझ कर भरे शब्दों का गलत प्रस्तुत

करन का जघन्य प्रयास है। मैंन मून ग्रन्थ के पृष्ठ पत्रह पर दब्बाय यो दिए हैं—मेहारव=रेत, डबर=मेष घटा। यो खेहारवडबर' का मेरा दिया अर्थ है 'धूलिका बादल'। 'डबर' का अर्थ मेष ही होता है 'समूह' नहीं। 'धूलि समूह' का क्या अर्थ? क्या बहुत सारी धूलें मिलकर आ गयीं? हम तो नहीं मान सकते। रही बात धूल के बादलों की। सो जब आकाश में धूल उडरर सूय की आच्छादित कर देती है तो उसे 'धूल का बादल' कहते हैं। (वचनिका सम्पादन, पृ 54 55)

'डबर' शब्द पर इतना कुछ लिखा जाने पर भी उसका 'अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका है। यह शब्द हिन्दी काव्यों में भी बहुतायत से प्रयुक्त हुआ है। 'सक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' में 'डबर' शब्द का इस प्रकार विवेचित किया गया है—

'डबर—सना पु (स) 1 आडम्बर, ढकोसला। 2 विस्तार। 3 एक प्रकार का चदवा। चदर छत। 4 शोभा। छटा। सजावट। बनावट। उदाहरण तापर सवारयो सेत अबर को डबर, मिधारी स्याम सक्षिधि निहारी काहू न जानी।—शृंगार। (सप्तम संस्करण (पुनमुद्रित) स 2028 वि पृ 404)'

उपयुक्त विवेचन में 'बादल' शब्द का कोई प्रयास नहीं आया है। 'डबर' के जितने ही उदाहरण मिलते हैं, उनमें यह शब्द किसी एक ही 'रूढ' अर्थ में प्रयुक्त हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता है। प्रसंग के अनुसार 'डबर' के विभिन्न अर्थ हाते हैं। यथा—

1 फुनि डबर' (=) डार फनि उच्चिय।

—पृथ्वीराजरासो, 18/67

2 डकि अबर डबर (=) वासकिय।

—वही, 19/84

3 फिर 'डबरी (=) सेन माहै फरसो।

—नागदमण, छद, 45

4 चवदे स मैमत तूझपर आठ स गमर

हा हम्मीर चकर्वं किसा अ आढा डबर (=)।

—हम्मोरीयण, मालकवित्त, 5

5 अलावदीन जग दम्मणा किसा हम्मीर डबर' (=) कर।

—वही 8

- 6 मरहुक्क कर 'डबरा' (=), मत कर घोला मन ।
—राजस्थानी नीति दूहा, 527
- 7 दीह गयउ हर डबर (=) नील भीजरणह ।
—ढोला मारू रा दूहा, 491

ढोली

'ढोली शब्द' ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा में आया है ।
यथा—

- 1 ढोला 'ढोलीहर' किया, मूक्या मनह विसारि । 138
- 2 ढोला 'ढोलीहर' मुझ, दीठउ घणे जणेह । 139

—ढोला मारू रा दूहा

'ढोला मारू रा दूहा के सशोधक श्री माताप्रसादजी गुप्त ने दोहा सख्या 138 में 'ढोलीहर' को दिल्ली+गृह तथा दाहा सख्या 139 में 'किंतु स्पष्ट ही 'दिली+हर = दिल्ली+घरा = प्रदेश है । (काशी ना प्र पत्रिका वष 65 अंक 1)

'ढोली' का कई स्थानों पर दिल्ली के पर्याय के रूप में प्रयोग हुआ अवश्य है, परंतु प्रस्तुत प्रसंग में यह इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है । यहाँ 'ढोली का अर्थ शिथिल', 'ढोला' ही हागा तथा 'हर' का अर्थ होगा 'इच्छा' । अतः 'ढोलीहर = शिथिल इच्छा वाले' अर्थ होगा ।

'ढोली 'ढोला' तथा 'ढोली शब्द रात दिन की बोलचाल में भी व्यवहृत होता है ।

अथ उदाहरण—

- 1 बग ढोली किया ।

—गोगाजी रा रसावळ ।

- 2 मम ढोल करे हिव हूए एकमन,
जादू जादवेइद्र जत्र ।

—बलि श्रीकृष्ण हविमणोरी, 45

तार

जिम जिम मन अमले किअइ, 'तार' चढतो जाई ।
तिम तिम माखणी तणइ, तन तरणापउ धाई ॥

—दोला मारु रा दूहा, 12

सम्पादक त्रय (डा रामसिंहजी, पारीकजी, स्वामीजी) ने 'तार चढती जाई' का हिंदी भाषाय—'ऊँचा चढ़ता जाता है—किया है। इस अर्थ को अस्वीकार करत हुए डा गुप्तजी ने 'तारकमाला चढ़ती जाती थी' अर्थ प्रस्तावित किया है। (ना प्र पत्रिका, वष 65 अंक) जो प्रमगानुबूल नहीं है।

'तार चढना' राजस्थानी भाषा में एक मुहावरे के रूप में व्यवहृत होता है जिसका अर्थ 'लहर चढना अथवा लहर आना' होता है। बोलचाल की भाषा में भी इस शब्द का व्यवहार धन, पद, यौवन तथा नशा के 'मद' की अवस्था में किया जाता है।

अर्थ उदाहरण—

1 झूठे रव तार दुरत वसत ।

—प्राकृत पगलम्, 249

2 पातर प्रीत पतग रग, तात मद री 'तार' ।

पहर पाछली ऊतधने, जात न लागै वार ॥

—दोहा सप्रह (ह लि)

3 मादक मैत उदाप किय बद्धि सुगधन 'तार' ।

—पृथ्वीराजरासो, 205

4 बित्त मत्त गयद खु 'तार' नत्तिय उत्तरय ।

—वही 289

त्रिविधी घडा

त्रिविधी घडा शब्द का प्रयोग हिंदगल में बीर रस में हुआ है। यद्यपि यह शब्द राजस्थानी-बीर साहित्य का बहुप्रयुक्त शब्द है परंतु हमने सम्पादक श्री मोतीलाल मेनारिया ने इस शब्द का एक बहुत ही विचित्र अर्थ

दिया है । यथा—

तिनमा कटक त्रिविधी घडा ।—2/25

त्रिविधी घडा—गर्मी के दिनों में शिवजी की मूर्ति के ऊपर लकड़ी की तिपाई (त्रिपादिका) बनाकर उस पर जल का घण्टा रखा देते हैं । उस घण्टे के पदे में एक छोटा सा छेद बनाकर उसमें कपड़े की बत्ती डाल देते हैं जिसमें थोड़ा थोड़ा पानी दिन भर गिरता रहता है ।

यद्यपि प्रस्तुत 'यास्या' का उल्लिखित शब्द के साथ कोई मेल नहीं है । विद्वान् सम्पादक ने त्रिविधी को त्रिपादिका एवं घडा को घट का पर्याय मान कर अर्थ किया है, जिसकी प्रसंग के साथ कोई संगति नहीं है ।

प्रस्तुत प्रसंग सेना का है । त्रिविधी का सुस्पष्ट अर्थ होता है तीन प्रकार की अर्थात् रथ अश्व और पदातिक । 'घडा का अर्थ होता है सेना । अतः पूरा पद का अर्थ होगा—'उस सेना में तीन प्रकार—रथ अश्व और पदातिक—की सेना है ।

अथ उदाहरण—

1 घाट जुडती त्रिविध घड ।

—महादेव पावती की बेलि, 377

2 घाय रमाडइ त्रिविध घड ।

—वही, 211

3 घडा घेघूवणी जाणि भाद्रव्य अणी ।

—गोगजी रा रसावळा 19

4 घड पाल्हू तणी जिन् राव घडा ।

—पावजी घाघल रो छद 32

दगि

'दगि' शब्द 'कुतुबशातत्र' के माध्यम से चर्चा में आया है । यथा—

जाण अगि अणगिया, पढी पुराणइ दगि ।

—कुतुबशातत्र 28

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री माताप्रसादजी गुप्त ने 'दगि' शब्द का अर्थ 'दग > द्रग = महानगर' किया है, जो बदायुण या सम के आधार पर किया गया प्रतीत होता है। डा गुप्तजी ने इस प्रकार के ध्वनि-साम्य वाले अनेक शब्दों का मनमाना अर्थ किया है, जिससे महान् अनर्थ की सृष्टि हो गई है।

'दगि' 'दग' अथवा 'द्रग' रूप भेदों के साथ इस शब्द का प्रयोग राजस्थानी काव्या में यत्र तत्र देखने को मिल जाता है। 'दगि' का अर्थ होता है 'मैदान', समतल भूमि होता है और इसी अर्थ में उपयुक्त उद्धरण में प्रयुक्त हुआ है।

अर्थ उदाहरण—

1 पड़ी किर अगि कि 'दगि' पळाळ।

—राजरूपक, पृ 801

2 कूडडियां कलरव कियउ, परि पाछिले 'दरगि'।

—ढोला मारू रा दूहा, 55

3 उठ घोन ठिछ जुरे जानि 'दग'।

—पृथ्वीराज रासउ, 11/12

दतूसलि

दतूसलि शब्द रास और रामावयी काव्य के माध्यम से पार्श्व में आया है। यथा—

घानीय घूणीय घोसवइ 'दतूसलि' दातडी।

—रास और रासा वयी काव्य 122

प्रस्तुत कृति के सम्पादन द्वय (श्री दशरथजी गर्मा व श्री दशरथजी ओझा) ने दतूसलि का अर्थ स 'दत्तम्यगल्य' अर्थात् 'दात का काटा' किया है, जो भ्रान्त है। सम्पादक महादय यहाँ पर भी ध्वनि साम्य के आधार पर चक्कर में चढ़ गये हैं। केवल ध्वनि साम्य के आधार पर किया गया अर्थ सगत ही है, यह आवश्यक नहीं है।

'दतूसलि' का प्रसिद्ध अर्थ हाथी होता है और उपयुक्त उद्धरण में इसी अर्थ में व्यवहृत हुआ है।

अ-य उदाहरण—

1 सृष्टि 'दत्तसला' झाडि छूट डळा ।

—योगजीरा रमावळा, 22

दउढ

'दउढ' शब्द 'रास और रासावयी काव्य' के माध्यम से प्रकाश में आया है । यथा—

दळ ददोळिउ 'दउढ' वरीम ।

—रास और रासावयी काव्य 161

प्रस्तुत कृति के सम्पादन द्वय (डा दशरथजी गर्मा व डा दशरथजी ओप्रा) ने 'दउढ' शब्द का हिन्दी अर्थ सांगेतीन दिया है जो भ्रान्त है । 'दउढ' का वास्तविक अर्थ साद अर्थात् डेढ' होता है ।

अ-य उदाहरण—

1 'दउढ' वरसरी मारवी त्रिहा वरसाउ वत ।

उणरो जोवन वहिगयउ तू किउ जोवन वत ॥

—ढोला मारू रा दूहा 429

दरवक

'दरवक' शब्द भी 'ढोला मारू' के माध्यम से प्रकाश में आया । यथा—

उत्तर थाजस उतरउ पल्लाणिया दरवक' ।

दहसी गात कुवारिया थळजाळी बळी अक्क ॥

—ढोला मारू रा दूहा, 289

उपयुक्त दोहे में प्रयुक्त 'दरवक' शब्द को सम्पादन त्रय (डा श्री रामसिंहजा श्री सूपकरणजी पारीक व स्वामीजी) ने हिन्दी के 'दरवना' शब्द का साम्य मानकर इसका अर्थ 'फटना' दिया है जो सगत नहीं है । 'दरवक' शब्द का सही अर्थ 'उट' होता है । सभी पलाणियाँ क्रिया की

1891

ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਵੀ ਸ਼ਿਕਾਇਤਾਂ ਹੋਣ ਲੱਗੀਆਂ, ਅਤੇ ਇਸ ਕਾਰਨ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ।

(1 ਅਕਤੂਬਰ, 1891) 1891 ਵਿਚ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ।

1891 ਵਿਚ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ।

ਨੋਟ

1891 ਵਿਚ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ।

1891 ਵਿਚ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ।

1891 ਵਿਚ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਇਸ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਖ਼ਤੀ ਨਾਲ ਹੱਥ ਪਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੱਤੀ।

दिवाजा

'दिवाजा' शब्द राजस्थानी का यो म पर्याप्त मात्रा म प्रयुक्त हुआ है । विभिन्न स्थानों पर सम्पादकों ने इसके तरह तरह के अर्थ लिये हैं । वास्तव म 'दिवाजा' का हिन्दी अर्थ 'शोभा' होता है । इसके अनेक उदाहरणों से इसी 'शोभा' अर्थ की पुष्टि होती है । यथा—

- 1 दिखाल किमू नाग बाळा 'दिवाजा ,
—नागदमण,
- 2 घर नो बात कहू हू लाजू, तो आगळिस्यु करू दिवाजू' ।
—पत्तण राजा की कथा (अप्रकाशित)
- 3 जाळउरइ आवइ गच्छराज, वाजिअ वाजइ बहुत 'दिवाज ।
—एतिहासिक जैन काव्य संग्रह 151
- 4 ठूणिया यत विराजइ, दिन दिन ए अधिक 'दिवाजइ ।
—वही 242
- 5 मारण पल्लीनगर चढपउ सो करत 'दिवाजा' ।
—वही, पृ 374

दीह

'दीह' का इ बेलि श्री वृष्णरुक्मिणीरी' के माध्यम से ज्ञान मे आया है । यथा—

नदी 'दीह' वषइ सरनीर घटइ निति,
गाढ घरा द्रव हेमगिरि ।
सुतरछाह तदि दीघ जगतिमिरि
सूर राह किय जगत्र सिरि ॥

—बेलि, दाला 187

बेलि के सम्पादक श्री दीक्षितजी ने 'दीह' का हिन्दी अर्थ 'बड़ा दिया' है । यदाचू इनके समस्त सस्कृत का 'दीघ' रहा है । पूर्वोपर संघ को पहचाने बिना इस प्रकार के अर्थ किये जाते रहे हैं । 'दीह' यदा पर 'दिन' का वाची

2018 20 1218 418 1118 4 1218,— 20 1218 218 20 20 1218
 12 1218 418 4 1218 1118 12 1218 418 1218 418 418
 44 2 1218 418—

11 2018 1218 1218 418 2018

1 2018 1218 1218 2018 1218

—1218 1 2018 4 1218 4

1218 4 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218

1218

(1218 1218) 1218 1218 1218 1218 1218—

1 1218 1218 1218 1218, 1

—1218 1218 4 4

1, 1218,— 20 1218 418 418 1218 1218 20 1 1218 1218 20 418
 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218
 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218
 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218

748 2 1218 418—

1, 1218 1218 1218 1218 1218

—1218 1 2018 1218 1218 418 1218 418 1218 1218, 1218, 1218,

1218

(1218 1218) 1218 1218 1218 1218 1218—

1 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218

1 1218 1218 1218 1218 1218,— 1218 1218,— 1218, 1

1218 1218 4 4

1 2018 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218 1218

अभ्य उदाहण—

- 1 धवल न अटक 'धुर' वहे, वासू पाणी कीच ।
—बाकीदास प्रथावली, भा 1, पृ 36
- 2 धी सरसति 'धुरि' बोनऊँ, भागू बुद्धि प्रकाश ।
—वणक समुच्चय, भा 2, पृ 202
- 3 'धुरा' सगइ अयचल अवधूत ।
—महादेव पावती री वेति 13
- 4 बोल बुलत गजत 'धुर' ।
डिगळ मे वीररस, 1/73
- 5 'धुरा' पोपियो धान न धान धायो ।
नागदमण, 80
- 6 आसाढ 'धुर' असटमी ।
—मडुलपुराण ।

निगोम

निगोम शब्द 'वचनिका राठोड रतनसिंहजी महसदासोतरो के माध्यम से वचनो का विषय बना है। यथा—

नरवर सूर निगोम, भारत्य मधिरो सागरी ।

आवै जाव अपछरा, जगि अरहट धडिजेम ॥72॥

—वचनिका, पृ 225

वचनिका के संपादक श्री शमुसिंह मनोहर ने 'निगोम' का हिंदी अर्थ = निष्ठाप पावन किया है जो प्रसमापुक्कू नही है। 'निगोम' शब्द का प्रयोग यहाँ माग के लिए हुआ है अतः प्रस्तुत दोहे का हिंदी भावार्थ इस प्रकार किया जा सकता है—

'युद्ध के मध्य नरक्षय्य वीरो के मारग मे अपसरए जाली आती हैं तथा सूरों का वरण कर भरी । जिस प्रकार सासादिक अरहट की है—

अरहट की घड़िया भी ऊपर से खाली (रिक्त) आती हैं और नीचे पानी से भर कर वापस लौटती हैं। इस उपमा से अप्सराआ की स्थिति को स्पष्ट किया गया है।

निवात

'निवात' शब्द डिगल का एक विगिष्ट शब्द है। इसका प्रयोग राजस्थानी की डिगल शली के अनिरिक्त लोक शैली में भी देखा जाता है। परंतु राजस्थानी ग्रंथों के हिंदी टीकाकार प्रायः उत्तरप्रदेशीय विद्वान रहे हैं, अतएव उन्होंने इस प्रकार के अनेक शब्दों का संस्कृत एवं प्राकृत के साथ ध्वनि साम्य देख कर अर्थ के स्थान पर अनर्थ प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ 'बीसलदेव रास' के निम्नांकित पद्यांश स्पष्ट हैं—

1 आछा चावळ धणीय 'निवात' —154/4

—म तारकनाथ अग्रवाल

2 उणिनइ दूध कटारइ धणीय 'निवात' ।—155/3

उपयुक्त पद्यांशों में प्रयुक्त शब्द 'निवात' का सम्पादक श्री तारकनाथ अग्रवाल ने 'नवनीत, मखन' अर्थ किया है, जो वास्तविक अर्थ से कोसों दूर है। 'निवात' का अर्थ होता है—'चीनी, शक्कर, बूरा, मिथ्री। चावलो एवं दूध के साथ चानी की ही बहुत उपयोगिता है, यदि घृत में भी हो तो काम चल सकता है। 'महादान आछइ धडइ, दूध माहिं सक्कर पडइ। अचलदास खीचीरी वचनिका (4/1) से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

अर्थ उदाहरण—

1 माठ दूध निवात सजोइ, धिठ लापसी कलेळ होइ ।

—जिणदत्त चरित्र, 412

2 घृत पीजिय आणि निवात घोळी ।

—नागदमण, 64

निहस

'निहस' शब्द बिलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री' के माध्यम से प्रकाश में आया। यथा—

आगम सिमुपाल मडियइ,
नीसाणे पडिते निहस ।

बेलि के नवीन सम्पादक श्री दीक्षित न निहस शब्द का हिंदी अर्थ प्रहार किया है। यह संपादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) के किये हुए अर्थ का अनुकरण है जो प्रसंगानुकूल नहीं है। निहस शब्द का वास्तविक अर्थ होता है— निर्घोष ध्वनि। बेलि की प्राचीन टीका— सुबोधमजरी दूदाडी, वनमालीवल्ली नारायणवल्ली में इसी अर्थ को स्वीकार किया गया है।

अर्थ उदाहरण—

- 1 'सिमुपालरइ आगम पहिला बुदणपुर नगरइ उच्छत्र
मांडथा। वीवाहरा वधामणा मांडथा। ते किम कहइ ? नाना
प्रकारि बाजारउ निहस=सदद, निर्घोष हुवालागउ।
—नारायणवल्ली, बा बो (हस्तलिखित)
- 2 निहस बाणासाबाढ, गाजियो निहाव।
—प्रा रा गी, भा 1 पृ 128
- 3 निवसउ निहाय धरणि घमघमइ।
—सदभवत्सधरिप्र, पृ 646
- 4 निहस नगरा सुरारा सवारा।
—नागदमण, 105
- 5 नाळा पउ घमक ववाळा 'नीद्रस।
—प्रा रा गी, भा 1, पृ 106
- 6 'निघसत निसाण निहाउ।
—वही भाग 2, पृ 22
- 7 हुवा सको हैरान नरसुर कर देव निहसि
—वचनिका, पृ 292
- 8 नाइ समर निहार, नागा सागा निहसियो।
—वही पृ 334

निहाव

'निहाव' शब्द वचनिका राठीठ रतनसिंहजी री' के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

निपट विह्व दळ आया नडा ।
नर सूरु अमित आया नेडा ।
नीवति सोर घडडि धुवि नेडा ।
नळि 'निहाव' गजिया नडा ।

—वचनिका, 39 (पृ 900)

वचनिका के सम्पादक श्री शम्भुसिंहजी मनोहर ने निहाव का अर्थ 'ध्वनि, घोष' करते हुए लिखा है 'निहाव' शब्द का अर्थ श्री काशीरामजी शर्मा ने 'प्रज्वलित होकर' किया है जो निराधार है। 'निहाव' शब्द यहाँ 'ध्वनि या घोष' है। 'नाळि निहाव', अर्थात् तोपों की गजन ध्वनि। उदाहरण—1 हुवो मेरघाव, निसाण निहाव। (गजगुण रूपकबध, पृ 101), 2 नीषक घाव दमाम 'नीहाव'। (रा वो गी, भा 1, पृ 22), 3 गाजियो गयण गोळा निहाव' (गजगुण रूपक बध, पृ 214), 4 साय 'निहाव' घयो नीसाणे (राजरूपक, पृ 66) श्री मूलचन्द 'प्राणेश' न इसका अर्थ एव आग्नेय अस्त्र किया है। (हिंदी अनुशीलन, वप 17, अंक 1 2, पृ 49) जो अयुक्त है। वचनिका पृ 71)

'निहाव' के उपर्युक्त विवेचन के साथ असहमति प्रकट करते हुए श्री काशीरामजी शर्मा ने लिखा है हमने निहाव' को निहाई' (आवा) की जलती ज्वाला मानकर अर्थ किया 'प्रज्वलित होकर'। शम्भुसिंहजी करते हैं— ध्वनि, घोष। हम बसा करते तो वे कह देते उसका वाचक तो गाजिया' इसी पक्ति में आ गया है ऐसे मामलों में उ'होने हमें सदा डाटा है। पहले से स 4 में देख सकते हैं। पर शम्भुसिंहजी डिगल के अवतार हैं। उन्हें सब छूट है। मुझे तो 'निहाव' के दो अर्थ आते थे 1 ज्वाला और 2 प्रहार। आगे दो स 90 में मैंने प्रहार अर्थ किया है। आश्चर्य है कि वहाँ शम्भुसिंहजी मान गए हैं। जसी उनकी इच्छा। हमें 'ध्वनि' अर्थ ठीक नहीं लगता। (वचनिका का सम्पादन, पृ 56 57)

एक शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं परन्तु निहाव वा 'ध्वनि या 'घोष' वाला अर्थ मेरी समझ में भी नहीं आता। वचनिका के दोनो—1

'नाळि निहाव' गाजिया नैहा' (39) तथा 2 'वागा वारारसतणा नाराजिया 'निहाव ।' (90) में 'गाजिया' एव 'वागा' शब्द ध्वनि अथवा 'घोष' के लिए प्रयुक्त हुए हैं तो फिर निहाव की क्या आयशयकता अवगिष्ट रह गई । श्री काशीरामजी शर्मा ने सत्य कहा है कि 'श्री रामुसिंहजी मनोहर ने मेरे दूसरे अर्थ 'प्रहार' को छंद 90 के अर्थ करते समय स्वीकार कर लिया है । वचनिका पृ 253 पर निहाव = 1 श्लोक, प्रहार एव 2 ध्वनि, 'घोष' श्री रामुसिंहजी ने स्वयं स्वीकार किया है । निहाव' शब्द के अर्थ के बारे में मेरा विनम्र अनुरोध है कि इसका तीसरा अर्थ 'आग्नेयास्त्र' भी स्वीकार करलें तो अर्थ सबधी विवाद सरलता से समाप्त हो जायेगा ।

अर्थ उदाहरण—

1 निहूस बाणा सा बाढ गाजियो निहाव ।

—प्रा रा गी, भा 1, पृ 128

2 भीघसते नीसाण निहाउ ।

—वही, भाग 2 पृ 22

3 घर घज्जे गज्जे गयण वज्जे भेरि निहाव ।

—गीतमजरी, प 50

4 निवसउ निहाय घरणि घमघमइ,

बबान्ध गदणगणि गमगमइ ।

—सदयवत्सवीर प्रबध 646

5 वज्जि निहाय' निसान ।

—पद्मीराजशासो, प 257

6 नाळा क्षढत 'निहाव' चल जुढ चक्करा ।

—प्रा रा गी, भा 4 पृ 60

7 झढ 'निहाव' पडियो झुलर ।

—वही, पृ 69

विशेष— 'निहाव' शब्द किसी वाच्य के लिए तो प्रयुक्त नहीं हुआ है विचार करना आवश्यक है ।

नेस

नेस' शब्द 'रास और रासावयो का य' के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

(अ) तदु 'नेस' निवेसनगिणइ नहदह नोक्षण ।

—रास और रासावयो का य, 66

(आ) नेस' निवेसि देसि घरि मदिरि ।

—वही, 96

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा) ने 'नेस' का अर्थ = (स) नेष्ट (निपिष्ट) किया है जो प्रसंगानुकूल नहीं है। 'नेस' शब्द बहु अर्थों है, उपर्युक्त उद्धरणों में यह 'घर' के अर्थ में व्यवहृत हुआ है।

अर्थ उदाहरण—

1 तद नदर 'नेस' बळमद्र न हुता ।

—नागदमण, 75

2 नमो नदर नेस आज ओतरं अक्रमा ।

—पीरदान लालस प्रयावली, पृ 96

3 नेस' घर दिवक्षणी पूरबधरा नाम ।

—प्रा रा गी, भाग 2 पृ 65

4 नेस नीर चढावा, करेवा प्रथी नाम ।

—वही, भा 2, पृ 126

पउळि

पउळि शब्द 'वीसळदेव रासो' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

पउळि पछिम तणी दीयउ मल्हाण ।

—वीसळदेव रासो, 85/2

प्रस्तुत 'रासो' के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने 'पउलि' शब्द का अर्थ = 'पउतिय, पका हुआ, जला हुआ दुग्ध।' दिया है जो निरा भ्रात है।

'परलि' शब्द सस्कृत के प्रतापी' शब्द से व्युत्पन्न है। यथा— प्रतोनि
> प्रोलि > पोरि > परलि = पील। यह शब्द प्रमुखद्वार के लिए प्रयुक्त होता
रहा है। उपयुक्त उद्धरण में भी 'परलि' शब्द पील = प्रमुखद्वार के अर्थ में
ही प्रयुक्त हुआ है।

अर्थ उदाहरण—

1. पहियर पइठउ छई 'परलि'।

—बीसलदेव रासो 118/3

2. पछिम परलि मेल्हा पहरार।

—वही, 128/9

3. परलिया 'परलि' उघाहि नइ।

—वही, 149/5

4. सदन सरोज बदन की सोभा ऊभी जोऊ पीलि।

—मीराबाई की पदावली, पृ 62

परठणो

परठणो त्रिधापद 'डिगळ मे वीर रस' के माध्यम से चर्चा में आया है।
यथा—

नारि कैलि फळ परठि टुज।

—डिगळ मे वीर रस, 2/32

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोतीलालजी मेनारिया ने 'परठि' का अर्थ
देखकर दिया है, जो अयुक्त है।

परठणो राजस्थानी भाषा का बहु प्रचलित क्रियापद है। प्रसंगानुसार
इसके अनेक अर्थ होते हैं। परंतु परठणों का प्रमुख अर्थ रसना भेजना
छिड़कना होते हैं।

अर्थ उदाहरण—

1. सुम धरि 'परठिय' (=भेजा)।

—डिगळ मे वीररस, 1/96

- 2 पहलो पग जबि 'परठायो' (=रखा) ।
—माधवानल कामकाळा 111
- 3 साहू चलतइ परठिया' (=रखे) ।
—ढोला मारु रा डूहा, 336, 337
- 4 पच्छिम दिसि पूठ पूरव मुल्ल 'परठित' (=बिया, रखा)
—बेलि, 153
- 5 परठा नवा नवा 'परठीजइ' (=भेजे जाते हैं)
—महादेव पारवती री बेलि, 279
- 6 पोतो साय परठियो (=भेजा), पूरबघर पतिसाह ।
—बचनिका रा र म दा री पृ 6
- 7 पत्र परठिया (=भेज) साहडार लिखिया विवर नबाब ।
—राजरूपक, पृ 331

परपण

'परपण' शब्द 'राजरूपक' के माध्यम से प्रकाश में आया है । यथा—
कुणवाद छल राठी कुल, आद परपण आपणे ।

—राजरूपक, पृ 93

प्रस्तुत कृति में सम्पादक प श्री रामकणजी आसोपा ने इस 'परपण' शब्द का हिन्दी अर्थ 'सामर्थ्य दिया है, जो प्रसंगानुवूल नहीं है । 'परपण का वास्तविक हिन्दी अर्थ सम्बन्ध' होता है । बोलचाल की भाषा में भी 'इणारै अर आपा र आदू 'पडपण' है' जैसे प्रयोग प्रचलित हैं ।

रूपभेद —पडपण

परिगहि

परिगहि शब्द 'रास और रासावयो काव्य' के माध्यम से चर्चा में आया है । यथा—

भावीउ ए मरहनरिए सिउ 'परगहि अवसापुरी ए।

—रास और रासावमी काव्य, 198

प्रस्तुत कृति के संपादक-द्वय (श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओसा) ने 'परगहि का अर्थ 'भीह' दिया है जो केवल अनुमानात्मक है। 'परगहि का शास्त्रविक अर्थ बुटुम्ब बबीला, पारिवारिकजन होता है तथा उपयुक्त उद्धरण में इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अ य उदाहरण—

- 1 आपतणो परिगह' ले आयउ,
तरणापी ऋतुराज तिणि।

—वेनि श्रीकृष्ण रविमणी री, 19

- 2 सह राजा 'परिगह' वसासरि।

—जिणदत्तचरित, 350

- 3 'परिगह' मह सत्रीहि असस।

—वही 460

परिघळ

'परिघळ का अर्थ भी 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

सहसे लाखे साटविमु 'परिघळ' आणा वेस।

घर बइठा ही प्रीतमा पट्टोळ पहिरेस।

—ढाला मारू रा दूहा 233

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी पारीवजी व स्वामीजी) ने उपयुक्त उद्धरण के पूर्वांश का हिन्दी अर्थ 'हजारों लाखों के पहनने के वस्त्र में इकट्ठे हो मंगा लूंगा (पृ 73) किया है तथा टिप्पणी (पृ 491) में साटविमु और 'परिघळ शब्दों के अर्थ को सदिग्ध बताया है।

डा माता प्रसादजी गुप्त ने उक्त सदेह का लाभ उठाते हुए लिखा है वस्तुतः 'साटविमु' शब्द एक नहीं है। 'साट' तथा विमु दोशब्द हैं। 'साट है > शाट—वस्त्र। 'विमु' है > वृष— सर्वाङ्गवृष्ट (मो वि) और

‘परिघट्ट’ मेरी समझ में है—‘परिगृहितु’—पति। अतः चरण का अर्थ होना चाहिए—सहस्रो और लाखों उत्तमोत्तम वस्त्र हे पति ! मैं (स्वयं) भगा लूंगी (ना प्र प, वप 69 अ 1)

दोहे के पूर्वाद्ध का ढा गुप्त जी का अर्थ देखा आपने। इसे कहते हैं द्रविड प्राणायाम ! चाहे प्रसंग हो अथवा नहीं वे तो ‘तेली रे तेली तेरे सिरपर माचा ! परन्तु तुक बठी नहीं ? कोई बात नहीं मीमा ! भारा तो मरसी क !’

‘परिघट्ट’ शब्द का व्यवहार ‘अत्यधिक, बहुत’ के अर्थ में हुआ है। आज की गाधारण बोल चाल में भी यह शब्द इसी अर्थ में व्यवहृत होता है। सन्देह की कतई गुजाईश नहीं है।

अर्थ उदाहरण—

1 पुच्छकर खड पाणी ‘परघट्ट ।

—ढोला मारू रा दूहा, (परिशिष्ट)

2 परघट्ट’ सचउ निज अयि ।

—अकबर प्रतिबोध राम, 20

पवाडो

‘पवाडह’ शब्द का प्रयोग ‘रास और रामा वयी काव्य’ के माध्यम से प्रवाश में आया है। यथा—

जुतुटि चडिसितु चडिउ पवाडह’

रास और रासावयी काव्य 110

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (डा दशरथ शर्मा व डा दशरथ ओझा) ने पवाडह का अर्थ गिरा देता है’ किया है, जो भ्रात है।

‘पवाडा’ शब्द राजस्थानी साहित्य का बहु प्रयुक्त शब्द है। रास दिन की शान चाल की भाषा में भी इसका व्यवहार पाया जाता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति आदि को लेकर विभिन्न विद्वानों ने समय समय पर लेख लिखे हैं। प्रत्येक शब्द को सस्मृत भाषा सधुत्पन्न करना आवश्यक नहीं है, यदि सरलता के साथ व्युत्पत्ति का मूल बत सकता हो, तब तो ठीक है, अन्यथा

केवल ध्वनिसाम्य के आधार पर द्रविड प्राणायाम करवाने में कोई लाभ नहीं है। 'प्रवाहा' शब्द 'पुढ चरित' 'अनुसरणीयमाग', 'श्रेष्ठ काय' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अथ उदाहरण—

- 1 'प्रवाहो' पनगा सिरं, जदुपति कीघो जाय ।
—नागदमण, 1
- 2 असम् प्रवाहा' तुप्त तणा अति ।
—पीरदान लालस प्रयावली, पृ 19
- 3 कीरततणा प्रवाहा' कारण वांघउ मूळ अमूळ कियो ।
—प्रा रा गी, भा 1, पृ 8
- 4 काह 'प्रवाहा' करयउ कळि ।
—गात मजरी पृ 10
- 5 और भी नरसिंघ हाय, प्रवाहा' जगजाहर किया ।
—रघुवर जस प्रवास, पृ 86
- 6 कहू 'प्रवाहा' केतला ऊठा एहवा लश ।
—माधवानळ वामरुदळा पृ 5
- 7 गिजडी पाण साटिया भेव,
वहा प्रवाहा जगत वदीत ।
—प्रा रा गी भा 7, पृ 128
- 8 प्रवाहा' स्वाट दरबार न आयो सुपह ।
—वही भा 1 पृ 74
- 9 पुण जित कवि एव प्रवाहो
उम 'प्रवाहा' कर अनि ।
—वही, भा 3, पृ 37
- 10 मुजाव अडमी मुजा 'प्रवाहा' दिनेम सुण ।
—वही, भा 3, पृ 98
- 11 प्रताप 'प्रवाहा' धी गरज्ज मेत्पाट ।
—वही भा 1 पृ 164

12 गवाड़े प्रवाहा' जसो धारधा गुमर ।

—वही भा 2 पृ 107

13 पुराणा नवा बीवां तणां 'प्रवाहा ।

—गीत मजरी पृ 65

14 करण गयो प्रवाहा बाधिया कध ।

—वही पृ 65

15 यला सिर प्रवाहा बीघतै एहडा ।

—प्रा रा गी भा 7 पृ 70

पसाव

पसाव शब्द 'पृथ्वीराज रासो' के माध्यम से प्रकाश में आया है ।
यथा—

अनखर 'पसाव राज राजेग ।

पातरिया

‘पातरिया’ शब्द ‘वेलि श्रीकृष्ण कविमणी री’ के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

वेलि द्वारा, 32 33 ।

वेलि के नवीन टीकाकार श्री आनन्द प्रसाद जी दोक्षित ने ‘पातरिया’ तथा ‘पातरि’ शब्दों का हिंदी अर्थ ‘बुद्धिभ्रष्ट होना, मूर्खता मत कर दिया है, जो प्रसंगानुसूल नहीं है।

‘पातरणो’ शब्द का व्यवहार साहित्य में तो अपलब्ध होता ही है परंतु वर्तमान कालिक बोल चाल की भाषा में भी इस शब्द का व्यवहार होता है—‘माई! हू तो पातरण्यो’ ‘म्हार पातरयो पड्यो’ ‘मारग पातरण्यो तद मोडो आईज्यो’, ‘म्हन तो तू हीअ पातरियोडो दीस है इत्यादि। इन सभी प्रयोगों से ‘पातरणो’ का हिंदी अर्थ भूलना घमित होना सिद्ध होता है।

अथ उदाहरण—

1 पातरिया, पातरि—पूव छ, भूनिमा ।

—वेलि की दुदाडी टीका ।

2 राज हिवइ मा पातरउ आघण छउ ओराह ।

—ढोला मारू रा दूहा पृ 8

3 राण सेसवसुषा मत्र राखण

रागिन ‘पातरियो, अहिराउ ।

—प्रा रा गी भा 3 पृ 63

4 मुजन केरा बोलहा मत पातरण्यो’ बोय ।

—ढोला मारू रा दूहा पृ 446

5 म्हे पातरिया वीर, तब न पायइ बीजग ।

—एक हस्तलिखित पत्र

प्रांण

‘प्रांण’ शब्द ‘ढोला मारू रा दूहा’ के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

का प्री रोगी प्राण करि, काइ अचती हाँण ।

—ढोला मारू रा दूहा, 627

प्रस्तुत वृत्ति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामी जी) न 'रागाप्राणकरि' का हिन्दी अर्थ 'या तो इनका अपने प्राणा का मोह है' किया है जो घ्रात है ।

उपयुक्त उद्धरण में प्राण शब्द 'शक्ति, ताकत, जोर अथवा प्रयुक्त हुआ है । अर्थात् 'या तो ते प्रियतम ! अपनी रातो से ताकत लगाओ, अपना कोई अचिर्य हानि की संभावना है ।

म हिन्दी शब्द सागर में भी 'प्राण शब्द का 5 अर्थ 'बल शक्ति' दिया है । (पृ 675)

पिडि

'पिडि' शब्द 'वेनि श्रीकृष्ण हविमणी री' (द्वाला, 125) में प्रयुक्त हुआ है । इसके सम्पादक ठा रामसिंहजी व स्वामी जी न 'पिडि' शब्द का अर्थ पेडियों पर किया है तथा श्री दीक्षितजी ने भी इसी को आधार मानकर अपने हिन्दी भाषा में 'पिड, तना बताया है । जो प्रसंगानुवूल नहीं है । 'पिडि' अथवा 'पिड' राजस्थानी भाषा के वीर साहित्य का एक वहु प्रचलित शब्द है, जिसका तात्पर्य होता है 'युद्ध अथवा युद्ध भूमि ।

पीन

'पीन शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से चर्चा में आया है । यथा—

क्या देहु न अष्ट की दीन हान गठ पीन ।

—राजस्थानी नीति दूहा, 393

प्रस्तुत वृत्ति के सम्पादक श्री माहनलालजी पुरोहित ने पीन का अर्थ दारू पीने वाला किया है जो अनुमानाश्रित है । वस्तुतः 'पीन का अर्थ स्पूल काय', मोटा' लिया जाना चाहिए ।

पातरिया

'पातरिया' शब्द 'वेलि श्रीवृष्ण दमिणी रो' के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

वेलि, ढाला, 32 33।

वेलि के नवीन टीकाकार श्री आनन्द प्रसाद जी दीक्षित ने 'पातरिया' तथा 'पातरि' शब्दों का हिंदा अथ नृदिभ्रष्ट होना, मूलना मत बर' लिया है जो प्रसंगानुसूल नहीं है।

'पातरणो' शब्द का व्यवहार साहित्य में तो जगलक्ष्य होता ही है परन्तु वतमान कालिक बोल चाल की भाषा में भी इस शब्द का व्यवहार होता है— 'माई! हूँ तो पातरण्यो' 'म्हार पातरयो पडण्यो', 'मारण पातरण्यो तद मोडो आईज्या', 'म्हन ता तू हीज पातरियोडो दीस है इरयादि। इन सभी प्रयोगों से 'पातरणो' का हिंदा अथ भूलना, भ्रमित होना' सिद्ध होता है।

अथ उदाहरण—

1 पातरिया पातरि—चूक छ, भूतिमा।

—वलि की दूडाही टीका।

2 राज हिंदा मां पातरण आघण छउ ओराह।

—ढोला मारू रा दूहा, पृ 8

3 राण सेसबसुषा खत्र रावण

रागिन 'पातरियो अहिराउ।

—प्रा रा नी भा 3 पृ 63

4 दुजन केरा बोलडा मत 'पातरण्यो मोय।

—ढोला मारू रा दूहा, पृ 446

5 म्हे पातरिया वीर तब न थायइ बीजग।

—एक हस्तलिखित पत्र

प्रांण

'प्रांण' शब्द ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

का प्री रांगा प्राण करि, काइ अचती हाँण ।

—दोला मारु रा दूहा 627

प्रस्तुत वृत्ति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामी जी) न 'रागांप्राणकरि का हिंदी अथ या तो इनको अपने प्राणो का मोह है' किया है, जो भ्रत है ।

उपयुक्त उद्धरण में प्राण' शब्द 'शक्ति तावत, जोर' अथ म प्रयुक्त हुआ है । अर्थात् 'या तो हे प्रियतम । अपनी रानो से ताकत लगाओ, अथवा कोई अचित्य हानि की समावना है ।

म हिंदी शब्द सागर म भी 'प्राण' शब्द का 5 अर्थ 'बल शक्ति दिया है । (पृ 675)

पिडि

'पिडि' शब्द 'वेनि श्रीकृष्ण रुक्मिणी रो (द्वाला, 125) में प्रयुक्त हुआ है । इसका सम्पादक ठा रामसिंहजी व स्वामी जी न 'पिडि' शब्द का अर्थ पेडियों पर किया है तथा श्री दीक्षितजी ने भी इसी को आधार मानकर अपने हिंदी भाषा में 'पिड, तना बताया है । जो प्रसंगानुबूल नहीं है । 'पिडि' अथवा 'पिड' राजस्थानी भाषा के वीर साहित्य का एक बहु प्रचलित शब्द है जिसका तात्पर्य होता है 'युद्ध अथवा युद्ध भूमि' ।

पीन

'पीन' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से चर्चा में आया है । यथा—

क्या देह न अष्ट को, पीन हीन शठ 'पीन' ।

—राजस्थानी नीति दूहा, 393

प्रस्तुत वृत्ति के सम्पादक श्री माहनलालजी पुरोहित न 'पीन' का अर्थ दारू पीने वाला' किया है जो अनुमानाश्रित है । वस्तुतः 'पीन' का अर्थ स्थूल काय, मोटा लिया जाना चाहिए ।

पुळें

पुळणो क्रियापद राजस्थानी की साहित्यिक भाषा एव मोलचाल की भाषा में समान रूप से प्रयुक्त होता है। प्रत्ययों के साथ इस शब्द के कई रूप सिद्ध होते हैं। परन्तु 'पुळणो' या हिन्दी अथ 'चलना' होता है। 'जुळने न पुळतो पूग बोनी। जसे प्रयोग रात दिन चलते हैं।

अप उदाहरण—

- 1 जेती जउमनमाहि, पजर जइ तेती 'पुळइ ।
—ढोला मारु रा दूहा, दू 171
- 2 साद कर निय सुदूर है, 'पुळि-पुळि चक्के पाव ।
—वही, दू 385
- 3 पापपुरी कटक पुळ प्रधळा ।
—श्री पावूजी पापल रो छद,
- 4 सा सामळी पाळी 'पुळइ
—सदयवत्सवीर प्रधध, प 163
- 5 पूजाराता पगि पळइ पुळिड' पूगळ पय ।
—माधवानळ कामकदळा, पू 50
- 6 त्रिविध पवन पूठइ 'पुळइ कुमुम कृपाण कसत ।
—वही, प 5
- 7 नीचू जोतू नित पुळइ, जिहा देरासर ग्राम ।
—वही प 41
- 8 यागवटवी राजा 'पळइ, सरसइ सीह सियाळ ।
—वही, प 39
- 9 पाछई जोई नई 'पळइ, सीह तणी आचार ।
—वही प 132

पेखणो

पेखणा शब्द संस्कृत के 'प्रेक्षण' से व्युत्पन्न है और इसका अर्थ 'नाटक खेल होता है। राजस्थानी साहित्य के साथ साथ यह शब्द हिन्दी साहित्य में

भी बराबर ध्ववहृत होता है। कई विद्वान् इसे 'पेखणी' त्रियापद मानकर इसका अर्थ 'देखना' कर दिया करते हैं, जो भ्रान्त है।

अर्थ उदाहरण—

- 1 जब धारू धर पडिय, राव 'पेखणी' समग्या ।
—हुम्मीरायण, मालकवित्त 13
- 2 ठयो हुमीर पेखनो' तरण नच राव अगण ।
—वही, सेमकवित्त, 11
- 3 नच इतिय अर रमणि ठामि ठामि 'पिखणय' सु'दर ।
—कवि सारमूर्ति मुनि जिनपद्यसूरि पट्टामियेक रास, 19
- 4 कोठइ कोठइ हुवइ 'पेगणा' ।
—का'हृददे प्रबध, प 134
- 5 ठामि ठामि भडि पखणा ।
—वही, प 166
- 6 पचमबद हुइ पखणा'रा ।
—वही, प 135

पैला

'पैला' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है।
यथा—

मने सु सगड मार, 'पैला' सु सगड पछै ।

—राजस्थानी नीति दूहा, 353

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री माहनलालजी पुरोहित ने 'पैला' का अर्थ दूमरे से लिया है, जो अनुमानाधिकृत है। इसका वास्तविक अर्थ 'दानु', 'विपत्ती' होता है और इसी अर्थ में साहित्य में प्रयुक्त हुआ है।

अर्थ उदाहरण—

1 पैला पाण्ड पदुतपग, इणरो आहिज चाल ।

—राजस्थानी नीति दूहा, 959

फारक

फारक शब्द भी 'रास और रासावयो काव्य' के माध्यम में चर्चा का विषय बना है। यथा—

कोडि बहुत्तरि फरकइ फारक' ।

—रास और रासावयो काव्य, 109

प्रस्तुत काव्य के सपादक द्वय श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझाने फारक <स स्फारक <प्रा फारक = घोड़े हि दीक्षय दिया है, जो प्रसंगानुकूल नहीं है। इस सुप्रसिद्ध शब्द की व्युत्पत्ति के चक्कर में चढ़कर सपादक भ्रमित हुए हैं। 'फारक' शब्द बहुवर्णी है। प्रसंगानुसार इसका हिन्दी अर्थ 'योद्धा, ध्वजा हल्का, छोटा किया जा सकता है। उपयुक्त उदाहरण में 'फारक' शब्द 'ध्वजा' के लिए प्रयुक्त हुआ है।

मिले जुले अथ वाले अर्थ उदाहरण—

1 फारक' (=योद्धा) पायक तुरग नाग नवि कोई छडइ ।

—पंचपादचरित रासु 740

2 वसिलत पायक सफर फारक (=योद्धा) धनुषर ।

—वमासवध, 1

3 सरोखा फारक (योद्धा) सोहे स्वामी ।

—राजतसीरो रासो

4 फुगराइ फू फू 'फारक' (योद्धा) फौज फिर फुरमाणियो ।

—रणमल्ल छंद, 19

5 दळ बादळ ताणिया दुबाहे, 'फारक' (=ध्वजा) ईसर तणा फरास ।

—महादेव पारवती रो वेलि, 119

6 फार फारकव (=योद्धा) हक टामकवे ।

—गागाजी रा रसावळा, 7

7 फारक (=ध्वजाए) फरक नरक फिर ।

—पाबूजी घाघलरो छंद, 37

8 दीधी पोळी फारक (=ध्वज) चनिया ।

—काहू दे प्रबध, 17

9 डड आवघ डाय, फारिक (योद्धा) फाय, वीरति बका झुझार ।

—गजगुण रूपक वध, 67

फुड

'फुड' शब्द 'जिणदत्त चरित' के माध्यम में प्रकाश में आया है।
यथा—

निमुणि सेठि कहउ 'फुड' तोहि ।

—जिणदत्त चरित, 35

जिणदत्त चरित के सम्पादक द्वय (डा माताप्रसादजी गुप्त व श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल) ने 'फुड' शब्द का हिन्दीअर्थ 'स्पष्ट' अर्थ किया है। परन्तु 'फुड' शब्द का व्यवहार 'सत्य' के पर्यायवाची रूप में हुआ है। 'स्पष्ट' और 'सत्य' में अंतर होता है। अतः इस शब्द का अर्थ 'सत्य, सच' ही लेना चाहिए।

अर्थ उदाहरण—

1 भणइ वीर 'फुड' वत कहि ।

—जिणदत्त चरित, 221

2 'फुड' वयणु भई अखिउ एहु ।

—वही, 382

3 महमण ससउ 'फुड' अवरहु ।

—वही, 525

4 देखि विमूख रयउ फुड' एहु ।

—वही 550

बउळाविया

'बउळाविया' शब्द 'बीसलदेव रास' के माध्यम में प्रकाश में आया है।
यथा—

बारह भास 'बउळाविया' नार ।

—बीसलदेव रास, 95/5

प्रस्तुत कृति के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने 'बउळाविया' शब्द का अर्थ 'बुलाया' किया है, जो प्रसंगानुकूल नहीं है।

'बउळावणो राजस्थानी भाषा का बहुप्रचलित क्रियापद है। इसका प्रयोग 'बिदाई देने, व्यतीत करने के अर्थ में होता है। उपर्युक्त उद्धरण में भी बउळाविया का अर्थ 'व्यतीत किये अथवा 'बिताए अर्थ में ही हुआ है। अर्थात्— मारि ने बारह महिने बिता दिए अथवा 'बारह महिनों को बिदाई देदी। इन दोनों का भाव एक ही है।

अर्थ उदाहरण—

- 1 साधण प्रिय बउळावण (=बिदा करन) जाय ।
—वीसलदेव रास, 69/2
- 2 'बउळाया (=बिदा किया) घण पगा लाग ।
—वही, 69/5
- 3 पाइयो बउळावी (=विना करके) बाहुडघो,
—वही, 75/9
- 4 महतउ दुखि 'बउळाविया (=बिताए) बारह मास ।
—वही 96/2
- 5 सउजगिया 'बउळाइ (=बिदा कर) वह गवख चढी सहक ।
—डोलामारु रा डूहा, 372

रूपभेद बउळाविया

बाहुडघउ

बाहुडघउ' शब्द वीसलदेव रासो' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

पाइयो बउळावी 'बाहुडघउ ।

—वीसलदेव रासो, 75/9

प्रस्तुत 'रासो के सम्पादक डा सारवनाथ अणवाळ ने 'बाहुडघउ' शब्द का हिंदी अर्थ '—बाहुडइ, बाहुडिम लज्जित' दिया है, जो भ्रान्त है।

बाहुडणो राजस्थानी का बहु प्रयुक्त क्रियापद है जिसका हिंदी अर्थ 'लौटना' होता है। उपर्युक्त उद्धरण में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'पाइया बिदा कर के लौटा है।

अथ उदाहरण—

1 नदीय वहृइ प्रीय वाहुइइ ।

—वीसलदेव रास 75/3

2 रोवती 'बाउही' चलयउ नाह ।

—वही, 72/1

3 'बाउही' गोरही तू घरे जाय ।

—वही, 110/3

4 ढोलो बजे न 'बाहुइइ', प्रीतम मोमन सात ।

—ढोलामारू रा दूहा, 410

5 ढोलो गयउन 'बाहुइइ', मुया मनावण चल्ल ।

—वही, 399

भावठि

'भावठि' शब्द का प्रयोग अचलदास खीची री वचनिका के माध्यम से प्रकाश में आया । यथा—

तउ वीस उयि विरोळि,

तइ वीसहयि विरोळियइ ।

'भावठि'भामइ तूतणइ,

हिज्यउ सू काई हिगोळि ॥

—वचनिका, पृ 36

वचनिका के प्रथम संपादक श्री दीनानाथ खत्री ने प्रस्तुत 'भावठि' शब्द का अर्थ बिना दिये ही इसे विचारणीय शब्द-सूची ज्या का ल्यो रख दिया । नवीन संस्करण के संपादक श्री भूपतिराम साकरिया ने अपनी गोल माल भाषा में इस शब्द का अर्थ दिया है— 'सारी इच्छाएँ' । उपर्युक्त उद्धृत पद्य के तीसरे पद्यांश का हिंदी अर्थ इस प्रकार दिया है— 'मेरी सारी इच्छाएँ आप पर योछावर हैं' । पता नहीं इस अर्थ का आधार क्या है ।
— वीसलदेव रास 75/3 — अर्थ होता है— मधकष्ट दुख सकट इत्यादि ।

'बउळावणो राजस्थानी भाषा का बहुप्रचलित त्रियापण है। इसका प्रयोग 'विदाई देने, व्यतीत करने के अर्थ में होता है। ऊपर्युक्त उद्धरण में भी बउळाविया का अर्थ व्यतीत किये अथवा 'बिताए अर्थ में ही हुआ है। अर्थात्—'मारि ने बारह महिने बिता दिए' अथवा 'बारह महिनो को बिदाई देदी। इन दोनों का अर्थ एक ही है।

अर्थ उदाहरण—

- 1 साधण प्रिय बउळावण (=विदा करने) जाय।
—वीसलदेव रास, 69/2
- 2 'बउळाया (=विदा किया) घण पणां लाग।
—वही, 69/5
- 3 पाहणो बउळावी (=विदा करके) वाहुडणो
—वही, 75/9
- 4 महत्त दुखि बउळाविया (=बिताए) बारह मास।
—वही, 96/2
- 5 सजणिया 'बउळाइ (=विदा कर) कह, गरम चढी सहवक।
—डोलामारू रा दूहा, 372

रूपभेद बउळाविया

बाहुडघउ

'बाहुडघउ' शब्द 'वीसलदेव रासो' के माध्यम से प्रकाश में आया है।
यथा—

पाहणो बउळावी 'बाहुडघउ'।

—वीसलदेव रासो, 75/9

प्रस्तुत 'रासो के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने 'बाहुडघउ' शब्द का हिन्दी अर्थ = 'बाहुडहद, बाहुडिय लज्जित' दिया है, जो भ्रत है।

'बाहुडणो राजस्थानी का बहु प्रयुक्त क्रियापद है जिसका हिन्दी अर्थ लौटना' होता। उपर्युक्त उद्धरण में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'पाहिया विदा कर के लौटा है।

अथ उदाहरण—

1 नदीय वहइ प्रीय बाहुडइ ।

—बीसलदेव रास 75/3

2 रोवती 'बाउढी' चलयउ नाह ।

—वही, 72/1

3 'बाउढी' गोरही तू घरे जाय ।

—वही, 110/3

4 ढोलो अजे न 'बाहुडइ', प्रीतम मोमन साल ।

—ढोलामारू रा दूहा, 410

5 ढोलो गयउन 'बाहुडइ', सुया मनावण चल्ल ।

—वही, 399

भावठि

'भावठि' शब्द का प्रयोग अचलदास खीची री वचनिका के माध्यम से प्रकाश में आया । यथा—

तउ बीस उयि विरोळि,

तइ बीसहयि विरोळियइ ।

'भावठि'भामइ तूतणइ,

हिउयउ सु कारई हिपोळि ॥

—वचनिका, पृ 36

वचनिका के प्रथम सपादक श्री दीनानाथ खत्री ने प्रस्तुत 'भावठि' शब्द का अर्थ बिना दिये ही इसे विचारणीय शब्द-सूची ज्यों का त्यों रख दिया । नवीन संस्करण के सपादक श्री भूपतिराम साकरिया ने अपनी गोल-माल भाषा में इस शब्द का अर्थ दिया है— 'सारी इच्छाए' । उपर्युक्त उद्धृत पद्य के तीसरे पद्यांग का हिन्दी अर्थ इस प्रकार दिया है— 'मेरी सारी इच्छाए आप पर 'योछावर हैं' । पता नहीं इस अर्थ का आधार क्या है । ~~वचनिका~~ का अर्थ होता है—मवकष्ट दुख, सकट इत्यादि ।

अथ उदाहरण—

1 मसतक सुन्दर तिलक घरह, दरसन दीठां 'मावठि' भाजइ ।

—ऐतिहासिक जन काव्य संग्रह 159

2 घरि घरि मगत होवइ नवनवारे

मावइ मावठि' सगळीं माजरे ।

—वही पृ 246

3 वाय तारा तो घमळ कळोघर,

'मावठ' मजण सील मुकाल ।

प्रस्तावना हरिरस, पृ 8

भीरि कजि

भीरि शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री के माध्यम से चर्चा में आया है यथा—

भीरि कजि

—वेलि 216

वेलि के सम्पादक श्री दीक्षितजी ने इस 'भीरि कजि शब्द का हिंदी अर्थ कष्ट पडना, काय किया है पता नहीं इतने यह अर्थ से किस आधार पर किया है ।

'भीर' शब्द 'वचनिका राठोड रतन महेशदासोतरी में भी आया है—
करण 'भीर' भारषकरण बीर मिल कर बीर—इस पद्यांश में आये हुये 'भीर' शब्द को इसके संपादक श्री बाणीरामजी शर्मा ने मिड घातु से बना बताया है । यथा—

अब लीजिए 'भीर' या 'भीड' का अर्थ । यह लडना भिडना वाली 'मिड' घातु से बना है अतः अर्थ है युद्ध । यो 'करणभीर' का अर्थ है 'युद्ध करने । 'भीड' का अर्थ सेना' भी होना है क्योंकि वह भिडती है । इसे फारसी वाले 'बहीर' लिखते हैं क्योंकि उनके यहाँ लिपि म न 'म' हाता है बीर न ड' । बहुते हमी पवि ओपे बहीर' में चलती सेना का वणन । वहाँ हमने 'बहीर' का अर्थ 'भीड इसलिए लिखा है कि 'भीड' का चाब्याय

सेना ही है और 'बहीर' शब्द से उसका सबध दिखाना हम अमीष्ट या 'मीड' का जन समूह वाला अर्थ तो लाक्षणिक है। वस 'सेना' का भी लाक्षणिक प्रयोग 'अधिक जन समूह' के अर्थ में होता है। किसी के साथ बहुत से लोग आ जाएँ तो लोग कहते हैं 'कयो सेना ले आए हो।' अब प्रश्न है शमुसिहजी के अर्थ 'भीर=सहायता' का उन्हें 'मीड बटाना' जसे प्रयोग से भ्रम हुआ है। पर वहा 'मीड' का अर्थ है 'सकट'। युद्ध भी एक सकट होता है यो 'मीड बटाना' का अर्थ है 'सकट का एक हिस्सा अपने ऊपर झेलना'। 'सकट वाले अर्थ का एक और प्रयोग देखिए—

‘जब जब भीर परी सतन प।

वचनिका का सपादन, पृ 45

अर्थ के लिए अनर्थ की सृष्टि कैसे की जाती है, श्री काशीरामजी शर्मा द्वारा किए गए विवेचन से सुस्पष्ट है। विद्वान शर्मा ने 'भीर' और 'मीड' को एक ही मान लिया है क्योंकि 'रलयोड' सूत्र में इनका पूण विश्वास है, परन्तु सभी धान बार्दिस पसेरी नहीं विकता। हिन्दी की बोलियों पर शर्मा-सिद्धान्त लागू हो सकता है, परन्तु राजस्थानी हिन्दी की बोली नहीं है। यह एक स्वतंत्र भाषा है। राजस्थानी ग्रन्थों के सपादकों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए।

'भीर या भीरि' शब्द का अर्थ 'सहायता' ही होता है। 'मीड' शब्द भिन्न है। बेलि के ससृष्ट टीकाकार ने—सहायत्व समागत—सुबोध मजरी, 'सहाय मागिबाक काजि—दूढाडी टीका 'भीरइ आया—वनमाली व नारायण वल्ली टीका में 'सहायता' अर्थ को ही स्वीकार किया है। और आज भी यही अर्थ प्रचलन में है।

अर्थ उदाहरण—

1 लू भोमि भरपरी 'भीर' भगत री।

—धीरदान प्रभावली, पृ 21

2 माइया री वेगि वरी भीर।

—वही पृ 90

रूपभेद—'भीरू' =सहायक।

उदाहरण =कहै काह कीजिये 'भीरू' बिभागै।

—नागदमण, 10

भुजाई

'भुज' शब्द का प्रयोग 'पृथ्वीराज रासो' में हुआ है। यथा—दिन एव महिष 'भुज' भय।

—पृथ्वीराजरासो, 11/122

रासो के सम्पादक डा. बी. पी. शर्मा ने 'भुज' का अर्थ 'भ्रूणता' ही किया है, जो प्रसंगानुवृत्त नहीं है।

'भुजाई' शब्द भोजन, खाना अर्थ में प्रयुक्त होता है। उपयुक्त उद्धरण में भी भुज का अर्थ 'खाने में' होता है।

अर्थ उदाहरण—

1 करि भुजाई चाडि कडासा।

—वचनिका राठीर रतनसिंघजी री, पृ 28

2 अति ऊजळा सघरांदही, भुजाई हलहीय सही।

—बाहूद दे प्रबय,

भुगति-भगति

'भुगति' शब्द वेलि थोक्कण हस्तिमिणी री के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

सेवते नवइ प्रति नवि सवे सुख,

जग चा भिसि वासि जगति।

हस्तिमिणी रमण तणाजु सरद रितु

'भुगति' रासि निस दिन भगति ॥

—वेलि, द्वारा 215

वेलि के टीकाकार श्री दीक्षितजी ने 'भुगति' का हिन्दी अर्थ 'विषयोपभोग' दिया है, जिससे कवि वर्णित भाव स्पष्ट नहीं होता है।

'भुगति' अथवा 'भगति' शब्द राजस्थानी काव्य में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। 'भुगति' का तात्पर्य होता है 'भोजन' छाजन द्वारा सत्कृत करना। उपयुक्त उद्धरण में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अथ उदाहरण—

- 1 'नवनव पवनान सुगध द्रव्यादि भिवस्त्रेभ्यः ।'
—सुबोध मजरी टीका
- 2 'नवा नवा पवनान तीए सुगध द्रव्य वस्त्रे करी ।
—वनमाली वल्ली बा बो (अप्रकाशित)
- 3 करइ 'भगति राजान कृसन ची ।
—वेलि, 148
- 4 भोजन 'भगति करइ तिण बार ।
—वीसलदेव रास, 14
- 5 भोज 'भगति' जुगति जुजूइ ।
—सदयवत्सवीर प्रबध, 501
- 6 पूगळ 'भगता नवी नवी ।
—ढोलामारू रा दूहा, दूहा 594
- 7 ढोलो कुमर पधारिया 'भगत करो बहुमत ।
—वही दूहा 245
- 8 कामू 'भगत' करेम ।
—वही, दूहा 246
- 9 'भगती' करो प्रधानह तणी ।
—वही, दूहा 223
- 10 भीमसेन 'भगताविया' नळरायह प्रधान ।
—वही (परिशिष्ट)
- 11 'भगति' घणी मळइ बहु भाय ।
—वही, (परिशिष्ट)
- 12 जामजाम ताइ 'भगत' जूजूई ।
—महादेव पारवती री वेलि, 254

भंभीत

भंभीत' शब्द को देखकर अनेक स्थानों पर इसका अर्थ 'भय से भीत' अर्थात् डरा हुआ किया गया है जो सगत नहीं है। रासस्थानी भाषा के

काव्यो मे इस शब्द का प्रयोग — 'डरावने' अर्थात् 'मयमीतकारी' अथ किया जाता है और यही अर्थ परपरानुमोदित है ।

अन्य उदाहरण—

1 भूप भयो 'मैमीत' मडोवर र माळियै ।

—एव प्रसिद्ध दोहा

2 माखरहर 'ममीत' तदा मुहुरी सिरदारी ।

—विहै रासो पृ 40

3 भूरो मरु 'ममीत' डोहै फौजां बाडवर ।

—बही, पृ 160

4 'ममीत' असाधा अरु अगा भासमान ।

—प्रा रा गी, भा 4 पृ 19

महिराण

'महिराण' शब्द 'डोला मारू' रा दूहा के माध्यम से अर्थात् का विषय बना । यथा—

मन सीषाणउ जइ हुवइ, पांवां हुवइ त प्राण ।

जाइ मिली जइ सजणी, डोही जइ 'महिराण' ॥

—डोला मारू रा दूहा 211

डोला मारू के सपादक नय (ठा श्री रामसिंहजी श्री सूर्यकरणजी पारीक व श्री स्वामीजी) ने टिप्पणी में इस शब्द की व्युत्पत्ति 'महाणव' से बताई है जो सगत है । परंतु श्री माताप्रसादजी गुप्त ने इस शब्द पर सशोधन प्रस्तुत करते हुए इसे यह रण्य है < प्रा रण्य, स अरथ्य । (ना प्र पत्रिका अष 15 अंक 1) बताते हुए इसे 'वन सिद्ध किया है जो समीचीन नहीं है । राजस्थानी एव गुजराती दोनों भाषाओं में 'महिराण' का तात्पर्य समुद्र ही लिया जाता है तथा यह बहु प्रयुक्त शब्द है ।

अन्य उदाहरण—

1 महद नरा मनरा 'महिराण' ।

—रघुवर जसप्रकाश, पृ 239

- 2 मनरा 'महराण' समापण मौजा कायण दीना तरणा कुरद ।
—रघुनाथ रूपक गीता रो, पृ 19
- 3 अण मिलणू मोहुव एमतो, मिटसी किम मौजा 'महराण' ।
—बांवीदास प्रयावली, भा उ, पृ 107
- 4 ताखे अनेका दया 'महराण' तस,
गिणा की बहम प्रयाण गाव ।
—रघुनाथ रूपक गीता रो

मातो

'मातो शब्द का रूप भेद 'मातै' शब्द 'वचनिका राठीठ रतनसिधजी महेशदासोतरी' के द्वारा धर्चा में आया है । यथा—

अेकणि हणे अनेक, किसनावत 'मात' बलहि ।

मरण तण दिन मारक बोटळ कियो विसलि ॥121॥

—वचनिका, पृ 299

वचनिका के सम्पादक श्री रामसिंहजी मनोहर ने 'मातै बलहि' का हिंदी अर्थ किया है—'युद्ध छिडने या ठनने पर' । 'मातणो' क्रिया प्राचीन द्विगल कायों में युद्ध ठनन या छिडने के अर्थ में बहुश प्रयुक्त हुई है । यथा— 1 'मिल्ली मातो दुद दमगळ' (गजगुण रूपक बध, पृ 143) 2 'महाअष्टमी भारत जुध मातउ थउ त्यां दूसरी अस्टमी आइ संप्राप्ती हुयी' । (अचळनाम खीचारी वचनिका पृ 24), 3 घाय सारा हुवे तेन दिहू घणा, मूस उपकष्ट मगराम मातो' (प्रा रा गी, भा 3, पृ 24)

तृतीय उद्धरण में प्राचीन राजस्थाना गीत (भा 3) के सम्पादक कबिराव मोहनसिंह ने 'सगरांम मातो' का अर्थ 'युद्ध में मतवाला हो गया' कर लिया, जो भ्रान्त है । यस्तुत बनास नदी यहा अपने पानी का रंग लाल हो जान के कारण बताती हुई गंगा यमुना से कहती है कि मेरे समीप ही यहां युद्ध छिडा पा' । इसी भांति, दयालदासरी क्यान में आये 'जुध जमराण पमसाण मातो जठ म 'पमसाण मातो का अर्थ बिड्डर डा दशरथ दामांने 'गहरा' किया है (दयाल दासरी क्यात भा 2 पृ 132) जबकि 'पमसाण मातो जठ' का अर्थ जहां 'पमसाण युद्ध छिडा पा किया जाना चाहिए ।

काव्यो मे इस शब्द का प्रयोग — 'डरावने अर्थात् 'भयभीतकारी' अथ किया जाता है और यही अर्थ परपरानुमोदित है ।

अथ उदाहरण—

1 भूप भयो 'भभीत' मडोवर रँ माळिय ।

—एक प्रसिद्ध दोहा

2 भाखरहर 'भभीत' सदा मुहरी सिरदारी ।

—वि है रासो पृ 40

3 भूरो मड 'भभीत' डोहै फीजां आडबर ।

—वही, पृ 160

4 'भभीत' असापा अद्र अगा मासमान ।

—प्रा रा गी, भा 4 पृ 19

महिराण

'महिराण' शब्द 'डोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना । यथा—

मन सीचाणउ जइ हुवइ पाँवां हुवइ त प्राण ।

जाइ मिली जइ सजणां, डोही जइ 'महिराण' ॥

—डोला मारू रा दूहा 211

डोला मारू के सपादक त्रय (ठा श्री रामसिंहजी श्री सूर्यकरणजी पारीक व श्री स्वामीजी) ने टिप्पणी में इस शब्द की व्युत्पत्ति 'मह्राणव' से बताई है जो सगत है । परंतु श्री माताप्रसादजी गुप्त ने इस शब्द पर सशोधन प्रस्तुत करते हुए इसे 'यह रण है < प्रा रण, स अरण्य । (ना प्र पत्रिका, बप 15 अक 1) बताते हुए इसे 'वन सिद्ध किया है जो समीचीन नहीं है । राजस्थानी एक गुजराती दोनों भाषाओं में 'महिराण' का तात्पर्य 'समुद्र ही लिया जाता है तथा यह बहु प्रयुक्त शब्द है ।

अथ उदाहरण—

1 महद नरा मनरा 'महिराण' ।

—रघुवर जसप्रवास पृ 239

- 2 मनरा 'महराण समापण मौजा, कायण दीना तरणा कुरद ।
—रघुनाथ रूपक गीता रो, पृ 19
- 3 अण मिलणू मोहुव एमतो, मिटसी किम मौजा 'महराण' ।
—बाकीदास प्र-पावली, भा 3, पृ 107
- 4 ताखे अनेका दया 'महराण' तस,
गिणा की वडम प्रषाण गाव ।
—रघुनाथ रूपक गीता रो

माती

'माती' शब्द का रूप भेद 'मात' शब्द 'वचनिका राठीड रतनसिधजी महेसदासोतरी' के द्वारा धर्चा में आया है । यथा—

अेकणि हणे अनेक, विसनावत 'मात कलहि ।

मरण तण दिन मारक, वीठळ कियो विसेखि ॥121॥

—वचनिका, पृ 299

वचनिका के सम्पादक श्री शत्रुसिंहजी मनोहर ने 'मात कलहि' का हिंदी अर्थ किया है—'युद्ध छिड़ने या ठनने पर' । 'मातणो' क्रिया प्राचीन डिगळ कायों में युद्ध ठनने या छिड़ने के अर्थ में बहुश प्रयुक्त हुई है । यथा— 1 'तिल्ली माती दुद दमगळ (गजगुण रूपक बध, पृ 143) 2 'महाअस्टमी भारत जुध मातउ थर, त्या दूसरी अस्टमी आइ संप्राप्ती हुयी' । (अचलदास खोधीरी वचनिका पृ 24), 3 घाय सारा हुये खेद हिंदू घणा, मूल उपकण्ट सगराम माती' (प्रा रा गी, भा 3, पृ 24)

तृतीय उद्धरण में 'प्राचीन राजस्थानी गीत (भा 3) के सम्पादक कविराव मोहनसिंह ने 'सगराम माती' का अर्थ 'युद्ध में मतवाला हो गया' कर दिया, जो भ्रांत है । वस्तुतः बनास नदी यहाँ अपने पानी का रंग लाल हो जाने के कारण बताती हुई गंगा यमुना से बहती है कि मेरे समीप ही यहाँ युद्ध छिड़ा था । इसी भाँति दयालदासरी ह्यात में आये 'जुड जमराण घमसाण माता जठ में घमसाण मातो का अर्थ विठ्ठलर डा दशरथ शर्मा ने 'गहरा किया है (दयाल दासरी ह्यात, भा 2 पृ 132) जबकि 'घमसाण माती जठ' का अर्थ जहाँ 'घमसान युद्ध छिड़ा था' किया जाना चाहिए ।

उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'मात कलह' का अर्थ 'युद्ध छिड़ने पर' ही किया जाना चाहिए। श्री काशीराम शर्मा ने इसका अर्थ 'युद्धमत्त' किया है, जो हमारे विचार से अयुक्त है। यो सांख्यिक दृष्टि से चाहे 'मात कलह' का अर्थ 'कलह में मत्त' या 'रणो-मत्त' कर लिया जाए, परन्तु प्राचीन काव्यों में अर्थ निणय का आधार मात्र व्युत्पत्ति को न बना कर शब्द के तत्कालीन विगिष्टायक प्रयोग को ही बनाना चाहिए, अथवा हम धार्मिक से प्रस्त होकर कवि के उद्दिष्ट मूल भाव तक नहीं पहुँच सकेंगे। (वचनिका पृ 299 300)

'मार्त' के बारे में इतनी चर्चा होने के उपरान्त भी श्री काशीरामजी शर्मा सतुष्ट नहीं हो पाये। वे लिखते हैं— दो ग 121 में एक चरण है— 'किसनावत मात कलहि । मैंने इसका अर्थ युद्ध में मत्त किसनावत किया था। रामुसिंहजी को उसकी युद्धो-मत्तता, जो वीरों का गुण है नहीं सुझाई और अर्थ किया—युद्ध छिड़ने पर किसनावत । प्रमाण में 'मात' के उदाहरण नहीं ढूँढ पाये तो 'मातो भूतकालीक क्रियारूप दूढ लाये दिल्ली मातो दुद यहाँ भी अर्थ युद्ध के आरम्भ होने का नहीं विकट रूप से होने का है। जिसे मारवाड़ी में 'माचना' और हिंदी में 'मचना' कहते हैं उसी को डिगळ वाले 'मातना' कहते थे। युद्ध मचना खलबली मचना, मगदह मचना आदि में जो 'मचम' से व्युत्पन्न मचना है वही युद्ध का 'माचना' या 'मातना' होता है। पर प्रस्तुत प्रसंग में तो पाठ है 'मात कलहि अर्थात् युद्धमत्त'। (वचनिका का संपादन 88)

श्री काशीरामजी शर्मा ने 'पचो का हुक्म सिर मार्ये पर पनासा ता यही गिरेगा'। कहावत को चरिताय किया है। मात अथवा 'मातो' को 'माचना' अथवा 'मातना' बताते हुए अततोपरवा वही पूर्व प्रयुक्त 'मत्त' ले आये। यद्यपि 'मातणो क्रिया का 'मचना' अर्थ ठीक है परन्तु प्रसंगानुसार इससे मिलते जुलते अर्थों पर विचार किया जा सकता है।

अर्थ उदाहरण—

1 अनत अनइ सिसुपाल अउमडा

भइ 'मातउ' मडियपउ गड ।

—बेलि, द्वाला 121

2 काली नाग न जुद्ध मातो तिसन ।

—नागदमण, छ 108

माम

‘माम शब्द ‘रास और रासान्वयी काय’ के माध्यम से चर्चा का विषय बना । यथा—

काहि विलव कुण कारण कीजइ,

‘माम’ मनी गमिवार वळी जई ।

—रास और रासान्वयी काय—1

‘माम’ शब्द का सम्पादको ने हिन्दी अर्थ > स माम, ममता’ दिया है, जो प्रसंगानुकूल नहीं है ।

‘माम’ शब्द का सही अर्थ ‘मर्यादा, सीमा’ है और अयत्र भा इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

अय उदाहरण—

1 जाणउ चत्र न गोती हणइ ‘माम’ माहरी हिव कुण गिणई ।

—रास और रासान्वयी काय—पृ 188

2 जुष फरस कर घरमा माम ।

—रघुवर जस प्रकास, पृ 244

3 कृति दुगाम रिणकाम, नूर मुख ‘माम’ निरखै ।

—राजरूपक, पृ 529

4 वयण विधि बात न काश्वळी,

टळी मॅघ सगवण माम’ टळी ।

—पावू घाघल री छद 6

5 महि भ्रजाद रागजइ माम’ ।

—महादेव पावती री वेलि, 177

6 देस विदेस गमाढी माम’

—गोलामारू, परि पृ 272

7 राज अनेरइ एहवी माम ।

—काहट्टे प्रबध, पृ 173

1. बालियो बाँव औरग सरिस बाजते ।

बळ ही 'मुरडते' भाग बालियो ॥ —गजगुण रूपर घष 289

धा सीतारामजी लालस ने यही मुरडने' का अर्थ 'शोध करने पर' या 'रुद्ध होने पर' किया है। इससे प्रयोग से सम्बद्ध मत्तवर पीरदान लालस के कवित्त की दो पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

तू करै बेल ईमर तणी, तू मुरडै महमायना ।

—पीरदान लालस प्रथावली, पृ 69

तथा—

तू मुरडे महमाय रुद्र भरतो रत्तवाळ ।

—वही

हमार विचार न वचनिका की विवेच्य पक्ति म यद् लोटने (या युद्ध से विमुक्त होने) के भाव का ही वाचक है, जसा कि उक्ताव मे इसका प्रयोग मूरज प्रकाश के उद्धरणों से प्रमाणित है। (वचनिका, पृ 233 234)

उपयुक्त विस्तृत विवेचन से भी 'जुडि मुरड बालियो जसो का भाव स्पष्ट नहीं हो पाया है। श्री रामुमिहजी मनोहर के किये गये अर्थ के अनुसार 'जसवतसिह नडते रडने युद्धविमुख होकर लौट गये। परंतु ता पय इसमे भिन्न है। जसवतसिहजी ने अपने मन मे युद्धशेन छोडा नहीं था उन्हें जबरन छोडाया गया था। यही भाव उपयुक्त पद्यांग म वर्णित है। अर्थात् लडते हुए जसवतसिहजी को (अर्थ लोगो ने) जबरन युद्ध क्षेत्र से लौटाया। पवि के पूर्वापर वर्णन से भी यही तात्पर्य निश्चयता है। जसवतसिहजी तो अत तक युद्ध क्षेत्र छोडने के लिए तत्पर नहीं हुए थे।

विवेच्य पद्यांग म प्रयुक्त 'मुरड' ग द 'जवरन बलात् जवरदस्ती, बलपूर्वक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अर्थ उदाहरण—

1. स्या माट तू गयु 'मरडी ।

—बळ दमयती रास, पृ 459

2. अटक म तियाँ ह्रिदवाण आयो उरड,
मुरड' पतसाह बीकाण मारु ।

—गीत मजरी, प 53

3. आवियो दविण हू 'मुरड' उम अणी ।

—वही, प 57

मेन

मेन शब्द 'वेलि श्री कृष्ण शक्तिमणी रो' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

नयन बुमोदिणि दीप नासिका,
'मेन केस राकेस मुख ।

—वेलि, द्वा 22

वेलि क नवीन सम्पादक श्री दीक्षितजी ने 'मेन' शब्द का हिन्दी अर्थ 'मदन' दिया है, जिसकी 'केसो' के साथ सगति नहीं बठती है।

संस्कृत की सुबोध मजरी टीका में लिखा है— मेन कसेति=केशा रात्रि रूपा इत्यपि । मेन शब्देन चारण भाषाया भुजङ्ग सदशा । बूढाडी टीका में इसका अर्थ रातिकउ अधकार किया है तथा इन्हीं अर्थों को आधार मानकर सम्पादकत्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने 'मेन' का हिन्दी अर्थ अधकार किया है। मेन के ये सभी अर्थ ठीक हैं। केशा का उपमेय 'कृष्ण वण का हाना चाहिए अतः 'भुजंग' तथा 'अधकार (रात्रिका) अर्थ ही ठीक हैं।

मेलहाण

मेलहाण शब्द बीसनदेव रासो के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

- 1 सर सामरि राजा कियो मेलहाण । (17)
- 2 दव वधेरइ दीयउ 'मेलहाण' । (19)
- 3 पउलि पविषम तणइ दीय मेलहाण । (85/2)
- 4 चिहु घडिया समी करिज्यो मेलहाण ।

प्रस्तुत कृति के संपादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने उपयुक्त उद्धरणों में प्रयुक्त मेलहाण शब्द का हिन्दी अर्थ 'छाडना, परिश्रय छोडा' किया है जो प्रसंगानुकूल नहीं है।

मेलहाण का वास्तविक अर्थ 'पडाव एकत्र होना, ठहरना होता है। इन्हीं अर्थों में यह शब्द उपयुक्त उद्धरणों में व्यवहृत हुआ है।

अथ उदाहरण—

1 मिल्णइ आगइ वरइ 'मिलाण ।

—महादेव पारवती रो वेलि, 289

मोगर

मोगर शब्द को देखते ही संस्कृत का 'मृगर' शब्द स्मरण हो आता है और बिना पूर्वापर संबंध पर विचार किए संस्कृत के आधार पर हिन्दी अर्थ ले लिया जाता है 'मोगरी'। जो सवधा अगणत है। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है शब्दरूपक का एक पद्यांग—

मिळियो लळ मोगर' गूर महा ।

—श्रीरामकण आमोपा शब्दरूपक पृ 198

विद्वान् शब्दाङ्क ने 'मोगर=मगर' का समान शब्दों को ठोकने वाला। शब्दाङ्क ने इसे गूर महा का विदोषण मान लिया प्रतीत होता है। इसी तरह 'रारणमल्ल छंद की सभ्यतादिशा श्री सरिता गहलोत ने इयम प्रयुक्त मोगरे को 'मोगरा (गदा) बताया है। उदा—

कडच्छि मुछ मोनि मल्ल मेछ भीछ मोगरे ।

—रारणमल्ल छंद पृ 33

परंतु 'मोगर' शब्द का वास्तविक अर्थ होता है— 'सेना'। उपयुक्त दोनों उदाहरणों में सेना अर्थ ही ठोक बैठता है।

अथ उदाहरण—

1 जिहि 'मोगर' मवात मारि ।

—पृथ्वीराज रासो, 14/59

2 'मोगर' सिद्धानी ।

—बही, 14/55

3 छोळो दिया दुहुदळा, त्रिठ काठा 'मोगर' ।

हर्वे वाला वागा माटिए, उहि पगा अहुर ।।

—निसाणी सुंदरदास की

(वचारिवी, 29 जुलाई, 1971 अंक)

मीज

‘वचनिका राठीर रतनासिध महमदासानरी’ के माध्यम में ‘मीजा समद (छ स 48/1) चर्चा का विषय बना है। वचनिका के सम्पाक श्री शमुनिहजी मनाहर ने ‘मीजा का हिा पर्याय ‘दान निया है जो परम्परानुमोदित है। परंतु श्री काशीरामजी शर्मा ने दान अय पर आपत्ति प्रकट करत हुा लिखा है ‘ उहें समुद्र द्वारा लिये गये दाना का पता होगा। मुझे ता यही पता है कि उसने एक बार परशुराम स भीत होकर कोरण नट खानी कर लिया था, दूसरी बार राम को माग दिया था। उससे पहले राकरजी को विष निया था और देवो को अमृत। चौदह रत्न मी निकाल दिये थे। पर मैं इनमें से किसी को दान नहीं मानता क्यों कि दान म स्वेच्छा भाव अपेक्षित है। हमन उारता से लुटाने वाल पुषयो क लिए—मीजी, लहरी, तरगी जसे माण प्रयुक्त हाते दखे हैं यद्यपि इनमें छोडा ‘अविचायकारी का भाव ना होता है। ‘मीजा समद का अय मुने ता ‘समु’ जसा तरगी ही ठीक लगता है बाकी शमुसिहजी की मीज। (वचनिका का सपादन पृ 63 64)

‘मीज का अय तरग लहर’ भी होता है। क्वाच तरगा को समुद्र की देन मानकर परवर्ती राजस्थानी कविया से इसे मात्र ‘दान अय में दृढ कर लिया हो। मीज का ‘दान’ अय म अनेक बार प्रयाग हुआ है।

अय उाहरण—

1 बळै मुक्कन दघवाडिधि पाई ‘मीज अपार।

—राजरूपक पृ 623

2 लाखा बडो दातार छ। तिन अनड न मन भाई जु किणहीक वड पावनू मीज दीज।

—नणसी री ख्यात भा 2 पृ 236

3 मैगळ तणी समापण मीजा सकवा रखा नही नसार।

—दयालदास री ख्यात, भा 2, पृ 239

4 कुजरा तणी मोहनाद करसा कवण, कवण कोडा तणी ‘मीज करसी।

—महाराजा रामसिध कल्याणमलौत री मरसियो

5 मनरा महाराण समापण मीजा कापण दीना तरणा कुरद।

रघुनाथ रूपक, प 19

6 मौजू 'ऊजळ महराण ।

—रघुवर जसप्रकाश, प 171

7 अणमिलणू मोए एमतो, मिटसी बिम 'मौजा महराण ।

—बाकीदास पथावळी, मा 3 प 10

8 त्याग समापण दान (तिम) आल मौज आप ।

—डिगळकोश, प 249 दान नाम

9 मौज' श्रवण रा माग, राखण रीत अनादरा ।

—प्रा, रा गी मा 5 प 126

10 महला अनेक 'मौज' चितावो महीप ।

—वही, प 142

रांगा

'रांगा शब्द डोला मारु रा दूहा के माध्यम से चर्चा में आया है ।
यथा—

सह सह बाहिम कबही, 'रांगा दहम चूरि ।

—डोला मारु रा दूहा, 492

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (डा रामसिंहजी, पारीकजी वस्वामीजी) ने रांगा शब्द का अर्थ रानो दिया है जो ठीक है । परंतु डा माताप्रसादजी गुप्त ने सम्पादक त्रय के उपयुक्त अर्थ को अस्वीकार करते हुए लिखा है— 'रांगा > राग = कवच है (ना प्र प षप 65 अंक 1) कदाच गुप्तजी का ध्यान 'राग = रागा शब्द की ओर चला गया प्रतीत होता है । 'रांग' धातु से 'रानो' का कवच बनता था परंतु उपयुक्त उद्धरण में उस कवच का कोई प्रसंग नहीं है । युद्ध' के अवसर पर ही विभिन्न प्रकार के कवच पहने जाते थे । सामान्य आने जाने के समय कवच पहनने की कोई तुक नहीं है । अतः सम्पादक त्रय का अर्थ 'रानो' ठीक है ।

राणोराणि

'रणो रानी' शब्द 'रास और रासादयी काव्य' के माध्यम से प्रकाश में आया है । यथा—

रेलङ्ग रयणायरमल, 'राणी राण' नमस्तुते ।

—रास और रासा-वधी काव्य, पृ 39

प्रस्तुत काव्य के सम्पादक द्वय—श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा ने 'राणी राणो' का हिन्दी अर्थ 'राणा राणी' दिया है जो निरा शाब्दिक है। 'राणोराण एक मुहावरा है तथा इसका प्रयोग—'समग्र, समस्त, सभी'—के अर्थ में होता है।

अर्थ उदाहरण—

1 सोवन धम मच चढावइ, राणोराणि से सह्य आवइ ।

—पांडव चरित रासु, 280

राळि

'राळि शब्द जिणदत्त चरित' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

सोस उघाडी घालियउ 'राळि' ।

—जिणदत्त चरित, 430

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (डा माताप्रसादजी गुप्त व श्री वस्तूरचंदजी कासलीवाल) ने 'राळि' शब्द का हिन्दी अर्थ 'राळि' = डालदी' व 'रग किया है जो केवल अनुमानाश्रित है। 'राळि' अथवा 'राळ' का वास्तविक अर्थ चीख' 'शोर' हाता है और उपयुक्त उद्धरण में यह शब्द 'चीख' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

अर्थ उदाहरण

1 सो घालीर समद मर्हि 'राळि' ।

—जिणदत्त चरित, 241

2 जो यह कथा घालिहइ 'राळि' ।

—वही, 549

रावळा

रावळा शब्द 'ढोलामारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

नळ राजा आदर दिवळ, जळ राजवियां जोग ।

देस वास सवि रावळा, बडघोटा बडलोग ॥

—ढोला मारू रा दूहा, 3

प्रस्तुत काव्य के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी पारीकजी व स्वामोजी) ने देस वास सवि 'रावळा' का हिन्दी अर्थ 'और उनको देग म निवाम करने के लिए महल किया है, जो प्रसगानुसूल रही है ।

'रावळो' तागीमी ठाकुरो के अंत पुर वो कहते हैं, परंतु उपयुक्त पचाश में यह शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है । यह ए० आदराय सरोधन है जिसका हिन्दी अर्थ हागा—'आपका, श्रीमान का' । साधारण बोलचाल की भाषा में भी 'हू रावळो चाकर हू अर्थात् मैं आपका सेवक हू' जैसे प्रयोग प्रचलित हैं ।

अर्थ उदाहरण—

1 'रावळो विडद माहि प्यारो (रुडो) लागे ।

—मीराबाई की पदावली पृ 134

2 मीरा कहे में भई रावरी, छाडो नहा निराट ।

वही, प 99

3 रुडो जिको प्रताप 'रावळा' भूडो जिको अम्हीणो भाग ।

—गीत पृथ्वीराज

रूपभेद— रावरो रावरी, रावरा

रिठि

'रिठि न-ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम स चर्चा का विषय बना है । यथा—

अति घण ऊनमि आवियउ साक्षी 'रिठि' साडवाय ।

बग ही मलात बल्पडा, धरणि न मुक्कड पाई ॥

—ढोलार मारू रा दूहा 257

प्रस्तुत कृति के संपादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामोजी) ने रिठि का अर्थ 'गीत दिया है, जो प्रसगानुसूल नहीं है । बदाच संपादका

का ध्यान बोनचाल के रट्टु' शब्द की ओर चला गया इष्टिगोचर होता है, जिसका अर्थ 'अत्यन्तशीत' होता है।

राजस्थानी वीर का 'या' में 'रिठि' शब्द का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ होता है 'झड़ी' अथवा 'प्रहार'। निरंतर प्रहारों को भी 'यड़ी लगादी कह कर व्यक्त किया जाता है। उपर्युक्त उद्धरण में 'रिठि' शब्द 'झड़ी' के अर्थ में ही 'यहूत हुआ है। पूव पद्याश का अर्थ होगा — 'बहुत से बादल उमड़ आये हैं और उहान वर्षा की अत्यन्त झड़ी लगादी है'।

अर्थ उदाहरण—

1 रिण रस आयुध 'रीठ' माची।

—पृथ्वीराज रासो, पृ 239

2 खिवती कनामे खागे रचावनी 'रीठ'।

—गीत मजरी, पृ 160

3 नराजा कनापीढाल त्रमागी तराळ नेजा।

राठीडा गनीमावापी नराताळ 'रीठ'

—शा रा गो मा 2, प 168

4 सतगा कराटे क्षाट वाने राठ 'रीठ' खगे।

—वही, भा 1, प 171

विशेष— रट्टु या 'रीठ' शब्द के प्रसंगानुसार 'युद्ध' अथवा 'तलवार' अर्थ में होता है।

लाल

लाल शब्द 'ढोला मारू रा डूहा' के द्वारा प्रकाश में आया है।
यथा—

दुज्जण बयणन समरह, मनी न बीसारेह।

कूर्पा लाले बरुवाह ज्यू, क्षिण क्षिण चीता रेह ॥

—ढोला मारू रा डूहा, 198

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने लाल शब्द का हिन्दी अर्थ 'प्रिय' दिया जो समीचीन है परन्तु

डा माताप्रसादजी गुप्त ने इस अर्थ को अस्वीकार करते हुए लिखा है ' लाल >स ललाय=स्नेह पूर्वक पालन करना । पर तु डा गुप्तजी ने दोहे के अर्थ शब्दों पर ध्यान नहीं दिया । यदि वे इस पूरे दोहे पर ध्यान देत तो पता चलता कि—कुररी पक्षी बच्चो को समुद्र तट पर छोड़कर भारत में प्रवासी बन कर आ जाता है । यहा पर रहते हुए प्रत्येक क्षण अपने बच्चो को स्मरण करते रहते है । इसी सबल के आधार पर वे सुकोमल बच्चे पत्पकर बडे हो जाते हैं ।

लाल' शब्द एक बहु अर्थी विशेषण है जिसका अर्थ प्यारा, 'सुन्दर, किया जाता है ।

लावा

'लावा' शब्द राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है । यथा—

जो कालो घुर जूपणो, लावा लखण न काय ।

—राजस्थानी नीति दूहा 945

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने लावा शब्द का अर्थ बुरे दिया है, जो प्रसंगानुबूल नहीं है ।

लावा शब्द राजस्थानी साहित्य एवं बालचाल की भाषा में समान रूप से व्यवहृत हुआ है । 'लावा का अर्थ लाम' लिया जाना चाहिए ।

अर्थ उदाहरण—

1 हर मज 'लावा लीजिय जी ।

—एक प्रतिज्ञ धुन ।

रूपभेद— लावो

लासह्य

'लासह्य' शब्द रास और रामावधो काव्य के माध्यम से प्रकाश में आया है यथा—

गय आगळिया गळ गळत दीजइ 'हयलास' ।

—रास और रासावयो काव्य, पृ 00

प्रस्तुत काव्य के सम्पादक द्वय श्री दगरथ दर्मा व श्री दगरथ ओझा ने 'लासहय' का हिन्दी अर्थ 'घोड़ो को घास' दिया है, जो समीचीन नहीं है। सम्पादको ने 'लास' को कदाच 'घास' पत्र लिया जात होता है। प्रस्तुत शब्द एक न होकर दो शब्दों 'हय + लास' से बना है। काव्य में सुविधा की दृष्टि से कविजन फोर बदल कर लिया करते हैं इस शब्द का 'लास = समूह पक्ति' तथा 'हय = घोड़ा' हिन्दी अर्थ किया जा सकता है। 'हयलास = घोड़ो की पक्ति अथवा समूह'।

अर्थ उदाहरण—

1 राजति वतिएण पदाति कुज रथ

हस माळ वधि 'लास हय' ।

{—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी रो, 241

2 छूटी ल्हास उतावळीय ।

—गोगाजी रा रसावळा

लू

'लू शब्द भी 'लोला मारू रा दूहा के द्वाग प्रकाण में आया है।
यथा—

प्रीतम कामणगारियां, थळ थळ वादळियांह ।

धण वरसइ सूकियां लू मू पांगुरियांह ॥

—लोला मारू रा दूहा, 248

डोला मारू के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी पारीकजी व स्वामीजी) न उद्धृत दोहू के उत्तरार्द्ध का हिन्दी अर्थ करते हुए उसके आगे प्रश्नवाचक लगा दिया है। वे (बागलिया) मेह वरसन से सूख जाती हैं और लू से पनप जाती हैं (?) (पृ 79)

ठा माताप्रसादजी गुप्त ने प्रश्नवाचक का लाभ उठाते हुए लिखा है 'लू और 'मू' अलग अलग नहीं है लूसू एक शब्द है और (लूसू)

<लूपय=वध करना, मारना, कदयना करना है। किन्तु यहाँ यह शब्द सम्भवतः विनिष्ट, होना के अर्थ में प्रयुक्त है। चरण का अर्थ होगा—मेघ के बरसत ही मैं सूख जाती हूँ और प्राकुरित होती हुई भी विनष्ट हो जाती हूँ।' (ना प्र प, वध 65 अ 1)

सीधे सादे और सरल शब्दों के अर्थ का डा गुप्तजी ने किम प्रकार घुमाया है, देखते ही बनता है। इसी प्रकार के विद्वानों द्वारा राजस्थानी भाषा का कल्याण होगा इसमें सशय नहीं है। 'लू' जैसे बहुप्रचलित 'ल' का वध करके उसे 'लसू' बना दिया। प्राकुरित होत हुए विनष्ट होने का क्या तात्पर्य। चरण का सीधा अर्थ किया जा सकता है—मेघा के बरसत ही सूख जाती हैं और लू (गम हवा) से प्राकुरित हो जाती हैं। तभी उक्त बदलियों का 'कामणगारियों' विशेषण सत्य होगा। जिन लोगों ने राजस्थान में श्रीराम ऋतु की बदलियों (ऊमों) को देखा है, वही उक्त तात्पर्य को समझ सकता है। लू नाम से कु चन्द्रमिहजी ने एक प्रकृति काव्य का सजन किया है तथा वह प्रशंसित भी हुआ है।

वग्ग

'वग्ग शब्द' पृथ्वीराज रासी के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

मारिया राज पृथ्वीराज 'वग्ग ।

—पृथ्वीराज रासी, 10/42

रासी के सम्पादक डा बीपी गर्मा ने वग्ग का हिन्दी अर्थ 'बगे (हिं धो) = बग गए दौट गए गिया है जो समीचीन नहीं हैं। वग्ग का इ समूह टोली श्रेणी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। राजस्थानी भाषा में 'वग्ग > वाग भी बोला जाता है। इसका एक अर्थ सं वल्गा > वाग = लगाम मुहरी होता है परन्तु उपयुक्त उद्धरण में यह समूह, टोली अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

—अप उदाहरण—

1 वग्ग टासी किय ।

—गोपाजी रा रसावळा,

2 जिमि के बाणा 'वग्ग' ।

—ढोला मारू रा दूहा, 324

3 करहा हुरउ 'वग्ग' ।

—वही 307

रूप भेद— वग, वाग

वरदळ

'वरदळ' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना । प्रयोग इस प्रकार है —

ढालउ मारू परणिया, 'वरदळ' ह्यउ उछाह ।

आ पूगळ ची पणमिणा, अउ नरवर वो नाह ॥

—ढाला मारू रा दूहा 10

ढोलामारू रा दूहा के सम्पादक त्रय—श्री सूर्यवरणजा पारीक, श्री नरात्तमनासजी स्वामी एव ङा श्रीराममिहजी— ने इस शब्द का अर्थ— धूमधाम से' और काष्ठक म श्रेष्ठ कुल' दिया है । तथा परिशिष्ट में दिया गया शब्दकोष में भी यही अर्थ दिया है । श्री माताप्रसादजी गुप्त ने अपने एक संगोपनात्मक लेख (ना प्र प भाग 65 अंक 1) में सम्पादक त्रय के उपयुक्त अर्थ का खण्डन करते हुए इसे—वर + दळ = वारात अर्थ दिया है परन्तु पर्याप्त खीचा-तानी के उपरांत भी 'वरदळ' का सही अर्थ नहीं बत सका । यद्यपि वरदळ शब्द का प्रयोग साहित्य में तो देखा ही जाता है, परन्तु साथ ही यह साधारण बोल चाल में भी व्यवहृत होता है । गावों में जब कोई सगाई सम्बन्ध हाता है उसमें वर कन्या के अतिरिक्त दोनों परिवार भा घन द्रव्य मान सम्मान, आज आदर में सराहनीय माने जाते हो तो लोग कहते मुने जाते है— 'और सबघ तो वरदळ रो ह्यो ।

युद्ध और विवाह में दोनों पक्ष समी प्रकार से समान होने चाहिए । यदि दोनों पक्षों में असमानता हो तो ये दोनों सम्बन्ध सराहनीय नहीं कहे जा सकते हैं । हिन्दी में 'वरदळ' के समी भावों का प्रकट करने वाला कोई शब्द नहीं मिलता है अतएव इसके अर्थ से मिलता जुलता उपयुक्त शब्द है, जिससे

उक्त अथ के साथ संगति बढ जाती है । उन्हाहरणांकित दाहे का हिन्दी भावाथ इस प्रकार किया जा सकता है— 'ढोला और मारू परिणय सूत्र म बधे मह विवाह (उछाय) उपयुक्त हुआ क्योंकि यह (मारू) पूगल गढ की पद्मिनी है और वह (ढोला) नरवर नगर का अधिपति ।

अथ उन्हाहरण—

- 1 मरीरा सेइ घरा मुरसाण, सराखा राज अन मुरताण ।
'वरदळ वेदि घडे वीवाह मिली धण तुम्ह महारिण माहि ॥
—राठ जतसी रो रासो (अप्र)
- 2 अरपियो उदक सु सुकित आवापणो ।
परणजा ह्यमिणि किसन 'वरदळ पणा ॥
सांया झूला दक्षमिणी हरण (अप्र)
- 3 ईस प्रजा अमसाह री जाणी मन जैसाह ।
पुत्री निज नवकोट पह, 'वरदळ चो वीमाह ॥
—राजरूपक, 597
- 4 दोनू देरावर तणी मटिवाणी बड भाग ।
ओप वर वरदळ अमी, सोम अचळ' सुहाग ॥
—वही 670
- 5 दळपति कोइ न दूवो वरदळि
निर दळिया मात शोक नर ।
कर ऊळजि विषया कहियो
राव तण घर लहीत वर ॥
दूवो विसराळ रावरतसिपजी री वेलि
(मरू भारती वय 16 अक 3)

बहिलउ

'बहिलउ शब्द महादेव पारवती री वेलि के माध्यम से चर्चा मे आया है । यथा—

'बहिलउ दरसन हवइ विसमर ।

—महादेव पावती री वेलि 92

वेलि' के सम्पादक श्रीरावतजी मारस्वत ने 'बहिलउ' गब्द का हि दी अर्थ प्रिब' दिया है, जो प्रसगानुबूल नहीं है ।

'बहिलउ' गब्द का अर्थ 'शीघ्र', 'जल्दी' होता है और इसी अर्थ में उपयुक्त उद्धरण में प्रयुक्त हुआ है ।

अर्थ उदाहरण—

1 बिहाणु नवो नाथ जागो 'बहेला ।

—नागदमण, 1

2 'बहिलउ' दीनो हुकम विममर ।

—महादेव पारवती री वेलि, 372

3 विसन न ल्याव 'बहिलो ।

—पीरदान लालम प्रभावली 60

4 पहलो 'बहलो पवग पिलाणि ।

—बही, 90

5 'बहिलो भाव साछोवर ।

—बही, 102

6 अति वेगि खतो बहिला बहिला ।

—पावूजी घांघल रो छन्द, 18

वासइ

'वासइ' गब्द भी 'ढोला मारू रा दूहा के द्वारा प्रकाश में आया है । यथा—

सूवा एक सदेसडउ, वार सरेसी तुङ्ग ।

प्रीतम 'वासइ' जाई नई, मुई सुणाव मुझ्य ॥

ढोला मारू रा दूहा, 398

उपयुक्त उद्धरण में प्रयुक्त वासइ शब्द का हि दी अर्थ पास दिया है (सम्पादक त्रय), जो प्रसगानुबूल नहीं है । यह राजस्थानी भाषा का बहु प्रचलित गब्द है इसका अर्थ होता है— 'पौछे । प्रस्तुत दोहाघ का हि दी

अथ इत प्रवार होगा— हे सुक ? तुम प्रीतम (डोला) के पीछे जाकर मेरे मरन की सूचना दो' (ताकि डाला इस दुषद समाचार को सुनकर सौट जाए) ।

अथ उदाहरण—

- 1 'वाम' साद हूयो हूक वागी, निसती तजा चलिया नेठाह ।
—प्रा रा गी मा 1 पृ 9
- 2 नाठ ससउ पिगळ अवास वासई राजा चढघई ब्रह्मि ।
—डोला मारू रा दूहा, परिशिष्ट पृ 242
- 3 'वासइ बधा वषव वेठ, माडी महिली पधि वरेउ ।
पांडवचरित रास, ठवणी 8/5
- 4 माणसिया मरजायसी 'वामे रदूसी वयण ।
—रागस्थानी नीति दूहा, 657

धानंत

'वानत' शब्द 'वचनिका राठोट रतनसिध महेगदासोत री के माध्यम से चचा का विषय बना है । यथा—

वीड घटा वात तेहि माहेम तियारा ।

—वचनिका, पृ 74

वचनिका के संपादक श्री गमुमिहजी मनाहर ने 'वात शब्द का हिंदी अर्थ '—दूरबीर, थोड़ा (वानाधारी अथवा बीरता का प्रतीक चिह्न धारण करी वाला)' किया है जो परपरानुमानित है परन्तु श्री वागीरामजी गर्मा ने इस अर्थ पर आपत्ति प्रकट करत हुए लिखा है हमने तो स्वयं (वानंत का) वाणधारी ही अर्थ किया है क्योंकि वानाधारी अर्थ हो तो निम्नलिखित मन्था अर्थन का विषयभूत पर कवि छटपू हुआ है— जानी मनुनाय मो न दानी अगनाय जना मानी बुदनाय मो न वाननी है पायसी— प्रस्तुत कविन के जो परिचय आरने अरबरी की उद्यन हैं फिर विशेष म यह भी लिखा है कि हम पद्य में शिन थोड़ाभा का वणन हुआ है उनके विरलून परिचय के लिए 'परिशिष्ट' में गतिहासिक स्थितियों भी देनिए । मार यह कि माध्य की मरत मार दीनिए । (वचनिका का संपादन पृ 59 60)

'वानैत' शब्द का अर्थ 'वाना, घारी, दूरबीर, योद्धा' होता है। योद्धा धनुष बाण रखते ही हैं, परन्तु इस अर्थ वाला प्रयोग देखने में नहीं आया। श्री शर्मा ने जो उद्धरण प्रस्तुत किया है, उसमें प्रयुक्त 'वानैत' शब्द भी उपर्युक्त अर्थ ही प्रकट करता है।

1 विन एवण वानत र भुख मुग फोज मुदाय ।

—वीर सतसई ।

2 बागो खग 'वानत' लाज उदा जग लेय ।

—राजरूपक, पृ 250

3 बाबा राखो लाज 'वान' री ।

—एक राजस्थानी भजन

वार

'वार' शब्द 'वीसलदेव रासो' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

जाहि हो मत्री 'वार' मलाउ

—वीसलदेव रासो, 80/9

प्रस्तुत रासो के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने 'वार' शब्द का अर्थ 'शीघ्र' किया है, जो भ्रान्त है।

'वार' शब्द राजस्थानी-साहित्य में एक साधारण बोल चाल की भाषा में समान रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ 'शीघ्र' से विपरीत 'धील', 'शिथिलता', 'देरी' होता है। उपर्युक्त उद्धरण में 'वार' शब्द 'देरी' अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। यथा— हे मत्री ! जाओ, देरी मत करो।'

अर्थ उदाहरण—

1 उत्तीभ ? चहियउ छइ राउन लावहू 'वार'

—वीसलदेव रासो, 19/4

2 रे पडिहार म लावउ वार' ।

—वही, 119/7

वाहर

वाहर शब्द 'रास और रासावली काव्य' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

इन 'वारू' असवार सार साहणव लावइ ।

—रास और रासावली काव्य, पृ 134

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा) ने वारू शब्द का हिन्दी अर्थ 'हाकरना' किया है, जो प्रसंगानुबल नहीं है। यह शब्द वाहर से बना है। 'वाहर' का अर्थ होता है 'सहायता रक्षा'। वारू' म ऊ' प्रत्यय है अतः 'अर्थ हुआ सहायता करने वाला'।

किसी प्रकार के 'घन, पगु' इत्यादि को अपहृत करने के पश्चात् उसे लौटाने के लिए जो प्रयत्न होता है, उसे 'वाहर' करना कहते हैं। वाहर में जाने पर यादवों अपहृतकर्तियों से सामना भी होता है। 'वाहर करने वालों' की विजय होने पर अपहृत घन वापिस लाकर उसके मालिक को सौंप देते हैं।

अर्थ उदाहरण—

1 नमो 'वाहरू' वेद प्रियमादि विदु ।

—पीरदान प्रथावली, पृ 28

2 बल परमेश वेदातणो 'वाहरू' ।

—वही, पृ 79

3 वक वण वदै जीदो वरूया, वागवाळी साम्ही 'वाहरूया' ।

—पावूजा घाघल रो छद, 30

4 चउयीया वार 'वाहर' करि चतुमुज

सख चक्र धर गदा सरोज ।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी रो 64

5 'वाहर' रे 'वाहर' कोई छइ वर

हरि हरिणाखी जाइ हरि ।

—वही 112

बाहळा

'बाहळा' शब्द 'बलि' श्रीकृष्ण हविमणी री' तथा 'डिगळ में वीर रस' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

- 1 अति अब कोप कुवर ऊफणियउ,
वरसाळू 'बाहळा' वरि।

—बेलि, दाला 34

- 2 नर महव 'बाहळ' समलिय।

—डिगळ में वीर रस, 2/15

'बलि' के सम्पादक त्रय (ठा रामतिहजी, श्री पारीकजी व स्वामीजी) तथा श्री दीक्षितजी एव 'डिगळ में वीर रस' के सम्पादक श्री मोतीलालजी मेनारिया ने 'बाहळा' व 'बाहळ' शब्द का हिन्दी अर्थ 'बादल' बताया है जो प्रसंगानुसूल नहीं है। 'बाहळा' शब्द बोल चाल की राजस्थानी में भी प्रयुक्त होता है और इसका अर्थ होता है 'नाला'। उपयुक्त दोनों उद्धरणों में इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अथ उदाहरण—

- 1 रुक अउ अबाला 'बहाळा' रत रळवळ।

—प्रा रा गो भा 3, पृ 105

विडग

'विडग' रूपभेद 'विरग' शब्द 'पृथ्वीराज रासो' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा

पिण्णि इक् चदे 'विरग'।

—पृथ्वीराज रासो, 19/39

रासो के सम्पादक डा वी पी शर्मा ने 'विरग' का हिन्दी अर्थ 'शूरवीर' दिया है जो प्रसंगानुसूल नहीं है। 'विरग' > 'विडग' शब्द बहुप्रचलित है, इसका हिन्दी अर्थ 'घोडा' होता है।

अथ उदाहरण—

- 1 वावड मुहां 'विडग'।

—डोला मारू रा डूहा, 227

2 बाजी बाज पमग 'विडग' ।

हम्मीर नाममाळा (घोडा रा नाव)

3 हर हैमर वगाळ ह्य बाजा खैग 'विडग' ।

—अवधानमाळा (घोडा रा नाव)

4 दहव करिस एरसा दळ 'विडग' सेत इनेक विमळ ।

—गीरपानलालस अघावल, पृ 89

विळिकुळियउ

'विळिकुळियउ शर' डोला मारु रा दूहा के माध्यमसे चर्चा में आया है । यथा—

मारवणी मुख ससि तणइ कसतूरी महकाइ ।

पासइ पन पीवणउ, 'विळिकुळियउ' तिणि ठाइ ॥

—डोला मारु रा दूहा, 600

प्रस्तुत कृति के सम्पादक अम (ठा रामसिंहजी पारीकजीय स्वामीजी) ने विळिकुळियउ शर का अर्थ निकाला' (पृ 200) तथा 'चचलता के साथ हिसना (पृ 548) किया है । डा माताप्रसादजी गुप्त ने उक्त अर्थों को अस्वीकार करते हुए लिखा है— दूसरे को 'यामुग्ध करने के लिए विस्वर वचन बोलने वाला' (पा स म) (ना प्र प, वप 65 अक 1)

विळिकुळणो राजस्थानी की बहुअर्थी क्रिया है, इसका अधिकतर प्रयोग प्रकट होना अर्थ में हुआ है । साथ ही 'तमतमाना जसा भाव भी व्यक्त होता है जो निम्नांकित उदाहरणों से स्पष्ट है—

1 बबरीय झाँटि झटक इक वालि, 'वळकळियउ' वटाणु पियु भ्रकुटी मालि ।

—राजस्थान के कवि भा 1, पृ 59

2 बीर अमाण अवसाण सिद्ध विळिकुळे

—प्रा रा गी, भा 3, पृ 105

3 'विळिकुळे' नरी पुर सुरा वाखाणिया ।

—वही, 143

- 4 ये विळकुळे' कमय अवतारी, तेजगळे मुगलाण तणो ।
—वही, भा 2, पृ 12
- 5 चढतुग वीरतिह 'विळकुळीय', अस छोडी ल्हास उतावळीय ।
—पाव्जूजी घाघलरो छद,
- 6 खळहळा खेत चळवळा खापर भर वीसहय 'विळकुळी ।
—रघुवर जसप्रकास, पृ 324
- 7 वेदनाद पडत 'विळकुळीया' महल महल सुणि सुरनर मिळिया ।
—रामरासो (अप्रकाशित)
- 8 बूदगा कायरा वाजती काहळी वीर भागसमा सूरमा विलकुळी' ।
—साया झूला एकमिणी हरण ।
- 9 वर छळ वसुह छळ वगछळ
'विळकुळ त उठिया वदनि ।
—प्रा रा गी, भा 8, पृ 50
- 10 'विळकुळे' राजरमणी वदन,
निरग रूप तरघद रा ।
—राजरूपक, पृ 545
- 11 विळकुळियत' वदन जेम वानारपड,
सग्रहि धनुष पुणच सरगपि ।
—वेनि द्वाला 131
- == विळकुळियत == भारतपणऊ आसरपड ।
—रा य वा वा बो (अप्रकाशित)

वेगडे

वेगडे चारद वचनिका राठोड रतनसिंह महेमदासोतरी के माध्यम स चर्चा का विषय बना है । यथा—

वेगडे मोड घवळ रा झूहा । (53/30

—वचनिका, पृ 133

उपयुक्त उदाहरण में प्रयुक्त 'वेगडे' शब्द का श्री दामुसिंहजी मनोहर ने 'बड़े या भयकर सींगोंवाला (व पृ 142) श्री साधु सुर्यपति के अनुसार यह 'विकट शृंग' से व्युत्पन्न है। हिंदी अर्थ क्रिया है, जिस पर आपत्ति करते हुए श्री कागीराम शर्मा ने लिखा है— हम ऊपर बता चुके हैं यह शक्ति का नाम है। दूहे सम्प्रति मेरे पास नहीं है, अथवा मैं एक दो लिखता। 'विकट शृंग' शरीरी कल्पना है। शक्ति का श्रेया है। जन लेखकों में 'भाषा' के शब्दों के सस्कृतिकरण की विचित्र प्रकृति थी। प्रबंध को 'म' ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे। यथा बही > बहिका, रसाई > रसवती, फगर > प्रगर। आजकल भी कुछ लोग गवकार (सरकार) चिटिका (टिकट), धुचुक (स्विच) जैसे प्रयोग करते हैं। (वचनिका का संपादन पृ 70)

उपर्युक्त उदाहरण में प्रयुक्त 'वेगड साठ' विशेषण है और 'घबल' के लिए प्रयुक्त हुआ है। ध्वनि साम्य के कारण 'विकट शृंग' जसी व्युत्पत्तियाँ शब्दों का द्विद्व प्राणायाम कराया जाता है। यदि व्युत्पत्ति के बिना काम नहीं चले तो इस वे > वे = दो + गड = शृंग अर्थात् 'दो सींगों वाला + साठ = वृषभ अर्थात् पराक्रमी उद्भूतवीर'।

अथ उदाहरण—

1 वेगड साठ वीरम विमाउ।

—छद राव अतसी रो, छ 2

रूप भेद—बगडड

वेडि

वेडिउ शब्द रास और रासावली काव्य के माध्यम स चर्चा का विषय बना है। यथा—

आपापू वेडिउ गिण कालि उगत सूर।

—रास और रासावली काव्य 118

प्रस्तुत का म के सम्पादक द्वय श्री दगधजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा ने 'वेडिउ' शब्द का हिंदी अर्थ वेडिउ < वेड (वेष्ट) = लपेट लेना अपने अधिकार में कर लेना। दिया है जो प्रमगनुत्पन्न नहीं है। ध्वनि साम्य के कारण वेड को सस्कृत 'वेष्ट' मान लिया है, जो समाधान नहीं है।

बढ़' का अर्थ युद्ध लड़ाई, मगडा' होता है और राजस्थानी कवियों ने भी अर्थ में व्यवहार किया है। उपयुक्त उदाहरण में 'वेडि-इड है, जिसका अर्थ होगा 'योद्धा'। वेड' का 'व' -व्यवहार में भी प्रचलित है।

अथ उदाहरण—

1 दाणव नेत्र वे 'विद्वक्कतत ।

—श्रावत पैगलम् 132

2 वि' वपु उड घड विहड ।

—राउ जतती रा रासा

3 वरड्ड वड वडेवीवाह ।

—वही

4 बीजह मेळ 'वेडि छा'वड ।

—का'हडदे प्रब घ, पृ 101

5 विजडा मूहे वडते बळमड, मिरा पुज कीषा समरि ।

—वैलि श्रीकृष्ण कविमणारी 126

6 वि'ता वुम नि'कुम वाकारह ।

—महाश्व पारवती रीवे'ति 185

7 आज मडा'पी आररी, मिन तिनगर वेड ।

—वीरदान श्र थावळी पृ 12

8 'विडि' घेन समापिय सोग वडे ।

पाजूजी घाघल रो ह', 45

9 'विड' त्रिजरी एह उछाह वाळी ।

—नागदमण 121

10 व'त्रमतह बडियार ए'उ वे' उतरइण ।

—रा बी रा वा, पृ 60

अपने-विड वेड

सथ

अपने-विड 'वेडि श्रीकृष्ण कविमणारी' री के माध्यम से अपना का विषय बना है। यथा—

सुखदेव व्याग जयदेव रागिरा

सुखरि अनेक सउ एक 'सथ' ।

—बेलि द्वा 8

बेलि क नय टीफाकार श्री दीक्षितजी ने 'सथ द्वा' का हिन्दी अर्थ '—सति है' किया है, जो प्रसंगातुल नहीं है।

'सथ' को दूटाड़ी टीकामे रीति बताया गया है तथा श्रीनरात्तमदामजी ने इसके दो अर्थ = एक्किल मत बताये हैं। सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) भी 'मत अर्थ की ही पुष्टि करते हैं। अत 'सथ' का हिन्दी अर्थ मत या 'रीति' लिया जाना चाहिए।

सवळी

'सवळी' शब्द भी ढोला मारु रा दूहा के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

'सावळी' का न सिरजिया, अबरि सागि रहत ।

वाट चरता माल्हाप्रिय, ऊपर छाह करत ॥

—ढोला मारु रा दूहा, 415

'सावळी' शब्द का सम्पादक त्रय (श्री ठा रामसिंहजी पारीकजी व स्वामीजी) ने 'श्यामल बदली' हिन्दी अर्थ किया है। पद्य में प्रयुक्त 'अबर' एवं 'छाह' शब्दों को देखकर कदाच मह अर्थ प्रकल्पित किया है, जो प्रसंगातुल नहीं है।

सावली शब्द का हिन्दी अर्थ होगा 'चीह' नामक पक्षी। नायिका कहती है— यदि भगवान ने मुझे चीह बना दिया होता तो मैं आकाश में उड़ती रहती तथा अपने प्रिय ढाला के चलने पर उसे अपनी छाया स आच्छादित करती रहती। वर्तमान में भी चीह पक्षी को 'सावळी' कहा जाता है।

अ य उताहरण—

1 यगि वाही सचरियउ, फूल करिया बहुपासि ।

समळी रुवि साविनी तेई उतपति अकासि ॥

—माधवानल वामबदला पृ 59

2 'समळी और निसक मख, जबुन राह न जाय ।

—धीर सतसई,

रूपभेद—समळी सबळी, सामळी ।

विशेष—सबळी का एक अर्थ 'श्यामल' भी होता है, जिसे पसग देखते हुए सही कहा जा सकता है ।

सरजित्त

'सरजित्त' शब्द ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा का विषय बना । यथा—

डेहरिय खिण मइ हुवइ घण बूठा 'सरजित्त ।

—ढोला मारू रा दूहा 548

प्रस्तुत शब्द 'सरजित्त' का डा माताप्रसादजी गुप्त ने > स सजित्त (=बनाया हुआ) से गुप्त न मान कर जो बनाया हुआ अर्थ दिया है, यह प्रसंगानुमोदित नहीं है । बादल के बरसते ही मड़को को कौन बनाता है । वस्तुतः इस शब्द का अर्थ जो उठना' अथवा 'सजीवित्त होना' होता है । इस प्रकार उपयुक्त अद्वली का अर्थ होगा—घन के बरसते ही मेढक घण भर मे जो उठते हैं अथवा सजीवित्त हो जाते हैं ।'

रूपभेद—सरजीत ।

साई

साई शब्द भी 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना । यथा—

साई देणे मज्जना, रागइ इणि परि हन ।

उरि ऊपरि आसू नळइ जाणि प्रवाळी चून ॥

—ढोला मारू रा दूहा, 377

सम्पादन त्रय (डा रामसिंहजी पारीकजी व स्वामीजी) ने 'साई देदे' का हिन्दी अर्थ 'घाड़ मारकर' लिया है। (पृ 121) तथा इसे साति=पेशगी लिया हुआ धन से व्युत्पन्न बताया है। (पृ 509) डा माताप्रसादजी गुप्त ने उपमुक्त अर्थ का अस्वीकार करते हुए 'राभरत प्रा >साई रा >साति (स+जादि) है' मांगत हुए जो 'कारज अर्थ प्रस्तावित करते हैं (ना प्र पत्रिका वष 65 अंक 1) जो किसी भी दृष्टि से सगत नहीं है।

'साई' यद्यपि पेशगी लिए हुए धन अर्थ में श्रुत लिया जाता है, जिसके अनुसार इसे परिचय का वाची भी माना जा सकता है अतः उपमुक्त उद्धरण में 'साई का अर्थ 'परिचय ही लिया जाना चाहिए। साथ ही यह 'साई गर' 'स्नेहातिगन के अर्थ में भी बहुतायत से लिया जाता है यह भी समीचीन है।

अर्थ उदाहरण—

- 1 सावलिगि सिउ 'साई लिद्ध बहुमान मन मुद्धि दिद्ध ।
—सदय वत्तवीर प्रवध, 240
- 2 ता राजा छाडि रेवत साई दोधु सामली वत ।
—वही 311
- 3 साई लई लगिइ पाइ ता वासइ अवली गमराइ ।
—वही, 652
- 4 'साई देज्यो सज्जना म्हा साम्हा जोएह ।
—ढाला मारू रा दूहा, 406
- 5 तोना मारू अनजयउ साई दे मिळियाह ।
—वही 312

साहण

साहण शब्द 'रास और रासावयी काव्य के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

गज साहणि मचरीय महूणर वेद्रीय पोयणपुर ।

—रास और रासावयी काव्य, 131

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (डा दशरथजी शर्मा व डा दशरथजी शर्मा) ने 'साहण' शब्द का हिंदी अर्थ—'स साधन < प्रा साहण किया है, जससे उपयुक्त उद्धरण का भाव स्पष्ट नहीं हो पाता।

'साहण' शब्द बहु अर्थों है प्रसंगानुसार इसके कई अर्थ होते हैं, परंतु साहण का प्रमुख अर्थ 'घोडा', 'अश्वसना ही होता है। उपर्युक्त उद्धरण में यह 'घोडा' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अथ उदाहरण—

1 एक वारु असवार सार 'साहणवे' लायइ।

—रास और रासावली का प 134

2 कापानळ परजळीय वीर 'साहण' पलणावइ।

—वही, 139

3 परिवार पूत्र पोत पडपोत्र,

अरथ 'साहण' महार इम।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री, 281

4 असी सहस 'साहण' मिळै।

—वीसळदेव रास, 26

5 मोटा मालिक सब तडाव्या 'साहण करउ सजाई।

—बाहडदे प्रबध, पृ 68

6 जेहल 'साहण' जेह साहण समुद समाहिमा।

—बाकीदास प्रधावली भा 3, पृ 16

साहणो

'साहणो' राजस्थानी भाषा का बहुप्रचलित त्रियापद है। इसका हिंदी अर्थ 'घारण करना, पकड़ना' होता है। राजस्थानी भाषा के शोध के हिंदी टीकाकारों ने 'साहणो' शब्द के अनेक विचित्र अर्थ प्ररूपित किये हैं। जिनका विस्तार भय से यहाँ पर उद्धृत करना समीचान नहीं है। साहणो का हिंदी अर्थ घारण करना, पकड़ना ही होता है।

अथ उदाहरण—

1 साहे=सगृह्य (सुत्राय मजरी), पकडि (ढूढाडी टीका), झाली (नारायणवल्ली टीका), पकडकर (श्री स्वामीजी)

2 बामइ करि सिर साहा' येणि ।

—सदय वत्सधीर प्रबध, 192

2 बहिन भणीनइ 'साहो वाह ।

—वही, पृ 240

3 बीजळ साह' बोलियो, इणठाक्ण भू आय ।

—बीर सतसई,

4 ऊमी साहइ लाज ।

—ढोला मारू रा दूहा, 480

5 साम्ही अणी लियठ दिख साहि ।

—महादेव पावती री वेलि, 222

6 सिर तिणवार प'नग 'साहियइ ।

—वही, 366

7 क चूडी साहा करा ।

—राजरूपक, 337

साहे

'साह' शब्द 'वेनि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री के माध्यम स चर्चा का विषय बना है । यथा—

बलि बध समय रय ल वइसारे,
स्याम कर साह मुकरि ।
वाइर रे बाहर कोइ छइ वर,
हरि हरणासा जाइ हरि ॥

—वेलि, दाला 112

वेलि के टीकाकर श्री श्रीशिवजी ने 'साह' शब्द का हिंदी अर्थ 'साधकर' विन्या है जिससे वास्तविक अर्थ स्पष्ट नहीं होता ।

‘साहो’ राजस्थानी भाषा का बहुप्रचलित त्रिया पद है, जिसका हिंदी अर्थ ‘पकड़ना, धारण करना होता है। उपर्युक्त उद्धरण में ‘साहे’ का हिंदी अर्थ ‘हाथ पकड़ कर’ ही है।

अथ उदाहरण—

1 ‘बलिवध श्रीकृष्ण समय पण्ड रूकमिणी रज करहाय आपरइ हाथ
सू साहि झाली पछई रधि बइसारी इम कहत उहूउ ।

—नारायणवल्ली वा वा टीका (अप्रकाशित)

2 बामइ करि सिर साही’ वेणि ।

—सदम बत्सवीर प्रबध, 192

3 बहिन मणी नइ ‘साही’ चाह ।

—वही, पृ 240

4 बीजळ ‘साहे बोलियो, इण डाकण मू आय ।

—वीरसतसई

5 ऊमा साहइ’ साज ।

—ढालामारू रा दूहा, 420

6 इक दिन अठ्ठ सुरताण साहे ।

—पृथ्वीराज रासउ, 5 13 8

7 सामी अणो लियउ दिख साहि’ ।

महादेव पावती री बेलि, 222

8 साहिब सा हत्यइ हीया, हत्यइ साहिउ ‘साहि’ ।

कुतब शतक 77

डा माताप्रसाद गुप्त ने ‘साहि < साध = उन्नत करना’ अर्थ करते हुए आगे प्रश्न विद्धान्त लगाया है ।

सिलह

‘सिलह’ शब्द ‘डिगळ में वीररस के माध्यमसे चर्चा का विषय बना है । यथा—

सिलह लाह सज्जत ।

डिगळ में वीरस, 2/8

प्रस्तुत सङ्गणन के सम्पादन श्री माताजालजी मेनारिया ने 'सिलह' का हिंदी अर्थ हथियार दिया है' जा अयुक्त है। 'म शब्द जा वीर का' या मे प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। 'सिलह का हिंदी अर्थ बच' होता है।

अर्थ उदाहरण—

1 'सिलह' माहि गरकाव सपेरी।

—वेत्ति, 104

2 हिवइ जिक् सुमट राज ब्या र साय चढी चढा पूठ यकी आया।
तिहा सुमट तेअवत सिलह=सनाहमा है गरकाव।

नारायणवल्ली वा व बो (अप्रकाशित)

3 'सिलह' अटकका मोमसम हुव बटटका दोय।

—वरनिहा रा र म दा री पृ

4 सिलह' सगि सरदार सह।

द्विगल मे वीररस, 2/48

सीगण

सीगण शब्द ढाला मारु रा दूहा के माध्यम से चचा का विषय बना है। यथा—

'सीगण' कोई न गिरजिया, प्रीतम हाथ करत।

काठी साहत मूठिया काडी कासीसत ॥

—ढोला मारु रा दूहा 416

सीगण शब्द का हिंदी अर्थ सपादक त्रय (ठा रामसिंहजी, श्री सूर्यकरण जी पारीक व स्वामीजी) ने नरसिंह बताया है, जो एक वाद्य होता है परन्तु इस अर्थ की यहाँ पर कोई समझ नहीं बटता है। अतएव सम्पादक त्रय ने दाह व उत्तराद्ध का अर्थ स्पष्ट बताया है। यह सभी सीगण के वास्तविक अर्थ के बिना जाने हुआ है, अ यथा दोह में कहीं भी कोई क्लिष्टता नहीं है।

सीगण राजस्थानी का बहुप्रचलित शब्द है। यह एक प्रकार का घनुप होता है परन्तु वीर का अर्थ के सजको न इसे माघारण घनुप का पर्याय के रूप में भी प्रयुक्त किया। उपयुक्त सम्पूर्ण दोहे का हिंदी भावाथ इस प्रकार किया

जा सकता है— (मगवान ने मुझे) प्रियतम के हाथ का घनुप बना नहीं बनाया (अपना) वे मुझे अपनी मुट्ठी में हड़ता के साथ पकड़ते और प्रसन होकर खींचते ।

अथ उदाहरण—

1 'सीगणी' परठयउ तीर ।

—काहूढदे प्रबघ, 31

2 सपराणा 'सीगणी' गुण गाजई ।

—वही, 52,73

3 सामा 'सीगण' तीर रिछूटइ ।

वही, 88, 215

4 सीगणी' गुण टकार, सहित वाणावलि ताणई ।

—भरते श्वर बाहुबली रास, 126

5 'सारख 'सीगणी' ।

—गोगाजी रा सावळा, 19

6 गाढई गुणि सीगण असत्र सइ ।

—सदयवत्स चरित्र 630

सीकोट

सीकाट शब्द ढालामारू रा दूहा के मान्यम से चर्चा का विषय बना है । यथा—

उत्तर आजस उत्तररइ ऊपडिया 'सीकोट' ।

काय दहेमी पोयणी काय बुवार घोट ॥

—ढोला मारू रा दूहा 296

उपयुक्त दाहे में प्रयुक्त 'सीकोट' शब्द का सम्पादन त्रय (ठा रामसिंह जी, पारीकजी व स्वामीजी) ने 'गीत के गड के गड उमड आये हैं (अपात् बढाने का जाडा पड रहा है)' । श्रीमाताप्रमादनी गुप्त ने सम्पादन त्रय ने उक्त अर्थ का नकारने हुए लिखा है किंतु धीरे धीरे गड के गड उमड आये हैं यह कल्पना युद्धिसंगत नहीं प्राप्त होती, क्योंकि गड तो सुरक्षा के लिए

होते हैं। मेरी समय में 'मोफोट' है—सिग्नु < सिग्नु = सहिजन का पेड़ और उप्पटना है—उत् + पत् = उलटना। अवघा म उपर त्रिया इसी अर्थ में अब तक प्रयुक्त होनी है। इस प्रकार 'उप्पडिया सीकोट' का अर्थ होगा। उस उत्तर वायु के शौंके से) सहिजन का पेड़ उलट गया है। (ना प्र पत्रिका, पृ 65 अंक 1)

सम्पादन अर्थ एवं श्री गुप्तजी दोनों ने उक्त शब्द का अभिप्राय ठीक से नहीं समझा है, केवल व्युत्पत्ति का चक्कर म पढ़कर अर्थ का अर्थ खड़ा किया गया है, जिसकी मूल प्रमाण के साथ कोई समझ नहीं है। 'सीकोट' शब्द ऋतु में जब अत्यंत तीव्र ठंड पड़ती है तब सूर्योदय से पूर्व टीला वाली जमीन पर एक काल्पनिक नगर का प्रतीत होना लगता है उसे कहते हैं। संस्कृत भाषा में इसे गंधर्व नगर की संज्ञा दी है। गर्मियों में तीव्र गर्मी के कारण सूखे मैदान में समुद्र लहराने का सा भ्रम होने लगता है, जिसे मृगतृष्णा कहा जाता है। ये दोनों प्रक्रियाएँ दृष्टि भ्रम से प्रतीत होती हैं।

अर्थ उदाहरण—

1 इतरा मांहे वात करता वार लाग। वकूठ री रस 'सीकोट' जेही गबरा इच्छा संरूपी गड कोट बाजार सतखणा सोजन में आवास गोल जोल चिनाम चित्र साळा रचाई।

—विडिया जग्गा वचनिका, 365

सुभिआण

'सुभिआण' शब्द राजस्थानी भाषा के काया एवं वर्तमान कालिक बोल चाल की भाषा में समान रूप से व्यवहृत होता है। इसका हिन्दी अर्थ 'बुद्धिमान पानी श्रेष्ठ' किया जाता है।

अर्थ उदाहरण—

1 साईं तुझ सुभिआण बडो दीवाण विगतो।

—पीरदान प्रयावळी, पृ 8

2 श्रीरामजी चद्रिजो तुरत, साहिबजी सुभिआणा।

—वही, पृ 12

किया गया है। यह प्रयोग राजस्थानी भाषा के ङिगळ वाच्यों के अतिरिक्त साधारण भाषा कवियों ने भी किया है। गद्यपद्यी भाषा में तो 'हसा भाई' एक प्रिय संबोधन की तरह व्यवहृत हुआ है।

अथ उदाहरण—

1 पीढीपीपनी खेत प्रयाळी मिरा हम नीसर सति ।

—बेलि 125

2 गळ पळ भरि हस वर गमण हुवा त्रिपत प्रिष हूर ।

—ग्विडिया जग्गा वधनिका, पृ 307

3 हाक गमाती उडियइ हम ।

—महादेव पावती री बेलि, 197

विशेष हम एक जलचर पक्षी होता है। राजस्थानी में इसका पर्याय वाची हज, हजा है परन्तु कई स्थानों पर क्षीर नीर बिबेसी पक्षी के लिए भी 'हस' का नाम प्रयुक्त हुआ है। यथा—

हस चढइ हीढइ सदा वीणा पुस्तक पाणि ।

निगम निरतर बालवइ घोर तार मधि वाणि ॥

—माधवानल कामकदला प्रवष, पृ 2

हर

'हर' शब्द भी ढाला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

1 ढोला ढीली 'हर' कियीं मूक्या मनह विसास ।

2 ढाला ढीली 'हर' मुझ दीठउ घणेह जणेह ॥

—ढोला मारू रा दूहा, 138, 139

श्रीमाताप्रसादजी गुप्त ने हर > घरा = प्रदेश अथ बताया है, (ता प्र प, वप 65, अक 1) जो प्रसंगानुकूल नहीं है। युत्पत्ति के चक्कर में पढ़कर इस प्रकार के सीधे गानों का अनर्थ कर दिया जाता है।

'हर' का अर्थ होता है इच्छा। यह साधारण बोल चाल की भाषा में भी प्रचलित है।

अथ उदाहरण—

1 अउ रुक्मिणी तउ वर आया ,

‘हर’ म करउ अन रायहर ।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री 77

2 अनराय कन्ता अनेरा सिमुपाल प्रमुख रागान हर=वाछा मत करउ ।

—वन माली वल्ली टीका (अप्रकाशित)

3 हरि गुण भणी ऊपनी जिवा हर हर तिण वदइ गवरिहर ।

—बही, बाला 29

हाम

‘हाम’ नाम भी ‘वचनिका राठौड रतन महसदासोतरी’ के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

हाथा पूरे ‘हाम’ पाडि खळा सगनीपुरी ।

भगवानो भारथ करै बकुठ गो वरियाम ॥ 116 ॥

—वचनिका पृ 293

वचनिका के प्रस्तुतकर्ता डा शमुसिंहजी मनोहर ने श्री काशीराम गर्मा द्वारा किया हुआ नाम का हिंदी अर्थ साहस को अस्वीकार करते हुए इसका अर्थ हाम=मनोरथ इच्छा अमिलापा दिया है। परंतु श्री काशीराम जी को यह सशोधन स्वीकार नहीं है। उन्होंने लिखा है जो नहीं, ‘हाम’ का अर्थ साहस या हिम्मत ही है उदाहरण के लिए वचनिका से बीस वर्ष बाद की रचना रतन रासो का प्रयाग देखें। वणन देवगिरी के घरे में ‘गपाल नामक वीर को गोला लगने का है। बहुत सुन्दर प्रसंग है अतः नीरस चर्चा के बीच इसे देना आवश्यक लग रहा है—

इहि अचभ अद्भुत कथा गट मढळ गिरदान ।

आनि लग्यो गोपाळ क गोळा तोप कमान ॥

जत्रह सुटठी बाळ कऽ सुगी बीज अकास ।

घर लुट्टी सुटटी कमळ हाम’ न सुट्टी तास ॥

तेन मस्त्रिय मान पळ बद्दळ किरन अघात ।

करवाही सामत के घर धरि पूगे सात ॥

(गड-के घेरे की यह अद्भुत कथा है कि गोपाल को तोप रूपी कमान से छूटा वह गोला आकर लगा जो माना थाल के यत्र से छूटा था अथवा मानो आकाश में बिजली कड़की थी। उस गोले के लगने से गोपाल का घड लोट गया, मिर टूट गया पर फिर भी उसका 'साहस' समाप्त नहीं हुआ। उसका तेज भी मानु अग्नि, ज्वाला या बादल में चमकती किरण के समान ममक रहा था। उसके हाथ ने उस अवस्था में भी सलवार चलाई और पूरे सात घड़ घराशायी हुए। शत्रुसिंहजी देखने कि रतन ने भी मरकर इसा तरह उज्जन में मुद्ध किया था। यो हाम है वार का वह माहस या उत्साह जो प्राण निकलने पर भी बच जाता है।) (वचनिका का सम्पादन पृ 86)

'हाम' शब्द के 'साहस' व हिम्मत अर्थ की पुष्टि में जो उदाहरण दिया है। यह राजस्थानी 'डिगळ' का न होकर 'पिगळ' का है। 'पिगळ' के क्वि 'डिगळ' के शब्दों का व्यवहार करते थे परन्तु उसे अपनी शली में बदल कर।

श्री काशीरामजी गर्मा न जो उद्धरण अपनी बात के समर्थन में दिया है उसमें प्रयुक्त 'हाम' शब्द भी मनोरथ 'इच्छा' का ही अर्थ प्रकट करता है 'साहस' का नहीं। वैसे 'इच्छा' में ही 'साहस' की उत्पत्ति होती है यह बात अलग है। डा. शत्रुसिंह मनोरथ द्वारा प्रस्तुत 'हाम' का हिन्दी अर्थ 'इच्छा, अनिलापा मनोरथ' ठीक है।

अथ उदाहरण—

- 1 टाठिसि तुझ उपरिथिकी हिमडइ केरि हाम ।
—माधवानल कामकदला प्रबध, पृ 232
- 2 गढा भूखियो कामरी 'हाम' गाढी ।
—गज गुण रूपक बध पृ 196
- 3 सग्राम विल 'हाम' पूरत मूरा ।
—वचनिका पृ 163
- 4 हूव मन आणद पीरस हाम जगी अग देख खडीवन जाम ।
—वही पृ 338
- 5 मढा वप हाम वहु नप भीर ।
—राजरूपक पृ 400

6 कमी सामसुन हाम' करारी ।

—वही पृ 746

7 धरण कमल चित 'हाम रे ।

—मीरा बाइ की पदावली पद 161

हूर

'हूर' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है ।
यथा—

भेष लिया सू मगत नह, ह्यै नह गहणा 'हूर' ।

—राजस्थानी नीति दूहा, 923

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'हूर' शब्द का हिन्दी अर्थ 'सुंदर' दिया है । जो भ्रान्त है । वस्तुतः 'हूर' सत्ता है जिसे सम्पादक ने विनोयण बना लिया । 'हूर' शब्द का अर्थ 'अम्परा' किया जाता है

अथ उदाहरण

1 नारायण निध नारायण नूर नारायण हम नारायण 'हूर'

—पीरदानलालम प्रथावली 7

हेलउ

हेलउ शब्द 'ढोला माए रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है । यथा—

मन्दि कालउ नाग ज्वळै हेवउ दे दे ग्याम ।

—ढोला माए रा दूहा 371

प्रस्तुत कृति के सम्पादक अथ (डा रामसिंहजी पाराजजी व स्वामीजी) ने 'हेलउ' का अर्थ पुकारा किया है । इस पर आपत्ति प्रकट करते हुए डा मानाप्रसादजी गुप्त ने लिखा है कि 'हेलउ' का अर्थ 'अनादर', 'उपेक्षा'

(गड-के घेरे का यह अद्भुत कथा है कि गोपाल को तोप रपी कमान से छूटा वह गोला जाकर लगा जो माना काल क यत्र से छूटा था अथवा मानो आकाश म विजली कडकी थी। उस गोले क लगने स गोपाल का घड सोट गया, मिर टूट गया पर फिर भा उसका 'साहस समाप्त नहीं हुआ। उस रा तेर भी मानु, अग्नि, ज्वाला या बादल म चमकती किरण के समान भमक रहा था। उसके हाथ ने उस अवस्था मे भी तलवार चत्ता और पूरे सात घड़ घराशायी हुए। शमुसिंहजी देखलें कि रतन ने भी मरनर इसा तरह उज्जन मे युद्ध किया था। या हाम है वीर का वह साहस था उतसाह जो प्राण निकलने पर भी बच जाता है।) (वचनिका का सम्पादन पृ 86)

'हाम शब्द के 'साहस व हिम्मत अथ की पुष्टि म जो उदाहरण दिया है। यह राजस्थानी डिगळ का न होकर विगळ का है। विगळ' के कवि डिगळ' के शब्दा का व्यवहार करते थे परन्तु उसे अपनी शली मे बदल कर।

श्री काशीरामजी गर्मा ने जो उद्धरण अपनी बात के समयन म दिया है उसमे प्रयुक्त 'हाम' शब्द भी 'मनोरथ इच्छा' का ही अर्थ प्रकट करता है साहस का नहीं। वसे 'इड इच्छा' से ही 'साहस की उत्पत्ति होती है यह बात अलग है। डा शमुसिंह मनोहर द्वारा प्रस्तुत हाम का हि दी अर्थ 'इच्छा, अमिलापा मनोरथ' ठीक है।

अथ उदाहरण—

- 1 टालिसि तुझ उपरिषिकी, रिमडइ केरि 'हाम' ।
—माधवानळ वामकदळा प्रवध, पृ 232
- 2 गढा भूखियो काँमरी 'हाम' गाढी ।
—गज गुण रूपक बध पृ 196
- 3 सग्राम विख 'हाम' पूरन मूरा ।
—वचनिका, पृ 163
- 4 हुध मन आणद पौरस 'हाम जगी अग देख खडीवन जाम ।
—वही पृ 338
- 5 भडाँ वप हाम दहू नप नीर ।
—राजरूपक, पृ 400

6 कमो सामसुत हाम करारी ।

—वही, पृ 746

7 धरण कमल चित 'हाम' रे ।

—मीरा बाई की पदावली, पद 161

हूर

'हूर' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा के माध्यम से प्रकाश में आया है ।
यथा—

मेप निपां गू भगत मह, हू नह गहणां हूर' ।

—राजस्थानी नीति दूहा, 923

प्रस्तुत कृति के सम्पादन श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'हूर' शब्द का
हिंदी अर्थ 'सुन्दर' किया है। जो भ्रान्त है। प्रस्तुत 'हूर' शब्द है जिसे
संपादक ने विनोदण बना दिया। हूर शब्द का अर्थ 'अधम' किया
जाता है

अथ उदाहरण

। तारापण रिष नारायण नूर तारापण हूम नारायण 'हूर'

—पौरदानलालग सदावली, 7

होता है इसलिए 'हेलउ देदे' का अर्थ होगा—'अनादर या उपेक्षा करते हुए।' (ना प्र प वष 65 अक 1)

डा गुप्तजी 'पा स म' के आधार पर शब्दों का द्रविड प्राणायाम कराते हैं। हेनउ जैसे सुप्रसिद्ध बोल चाल के शब्दों के बारे में भी उन्होंने क्लिष्ट कल्पना कर ही डाली, अथवा इसका अर्थ पुकार सही है।

अर्थ उदाहरण—

1 दीडू तो पूगू नहीं 'हेला लाज मरूह।

—डोला मारू रा दूहा (परिगिष्ट)

2 न करिवा जोग जुगति का 'हेला'।

—नाथ मिद्धो की बानियाँ 67

हेला

हेला शब्द राजस्थानी साहित्य एवं बोलचाल की भाषा में पुकार, जोर से बुलाना' अर्थ में व्यवहृत होता है 'दीडू तो पूगू नहीं हेला लाज मरूह। (डाला मारू) पचाश में उपयुक्त अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है, परंतु हेला शब्द का एक और अर्थ भी होता है—आयासहीनता, सरलता। इसी सरलता के अर्थ में भी साहित्य में 'हेला' के प्रयोग मिलते हैं। यथा—

1 घणा दीह लगु रामत रम्या तुरक देस हेला' निगम्या।

—हम्मीरायण 77

2 मडोवर भनजाण 'हेलि मातहि बीप्र हियो।

—हम्मीरायण मालकवित्त 8

3 भक्ति गाइज्जए हरिस हेला'।

—जैन भाष्य मग्रह 399

